संगत संसार

संरक्षक : स. वीरेन्द्र सिंह जौहर

प्रबंधकीय मण्डल :

स. गुरुचरण सिंह गिल (अध्यक्ष)
श्री राकेश रिखी (मंत्री)
श्री विनोद गांधी (कोषप्रमुख)
श्री संतोष तनेजा (सदस्य)
स. रविन्द्रपाल सिंह (सदस्य)
श्री सुदर्शन सरीन (सदस्य)

संपादकीय मण्डल :

डॉ. कुलदीप अग्निहोत्री
डॉ. अवतार एस. शास्त्री
स. देविन्दर सिंह गुजराल
स. कुलवंत सिंह सचदेवा
स. राजेन्द्र सिंह

संस्थापक : स्व. रमेश श्रोत्रिय

अनुक्रमणिका

- सम्पादकीय 4
- दल भंजन गुरु सूरमा 5
- श्री गुरु रामदास जी 9
- भक्ति का राग..... 10
- महारानी जिंदा का संघर्ष 13
- सिंध सिरमौर योद्धा दाहिर सेन 15
- मिंटगुमरी के शहीद 17
- Wahe Guru Ji Ka Khalsa- 19
- रिषीकेश लट्टा 20
- भारत की आजादी में सिखों का योगदान 21
- संगत समाचार 24

संगत संसार कार्यालय

4/49, W.E.A, सरस्वती मार्ग, करोल बागनई दिल्ली-110005
दूरभाष : 011-25728032 मो. 07599250966
email: sikhsangat@khalsa.com, sangatsansar@gmail.com
website : www.sangatsansar.com

तिलंग महला १

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो॥
पाप की जंञ लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो॥
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूडु फिरै परधानु वे लालो॥
काजीआ बामणा की गल थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो॥
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो॥
जाति सनाती होरि हिदवाणीआ एहि भी लेखै लाइ वे लालो॥
खून के सोहिले गावीअहि नानक रतु का कुंगू पाइ वे लालो॥
साहिब के गुण नानकु गावै मास पुरी विचि आखु मसोला ॥
जिनि उपाई रंगि रवाई बैठा वेखै वखि इकेला ॥
सचा सो साहिबु सचु तपावसु सचड़ा निआउ करेगु मसोला ॥
काइआ कपडु टुकु टुकु होसी हिदुसतानु समालसी बोला ॥
आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला॥
सच की बाणी नानकु आखै सचु सुणाइसी सच की बेला ॥
(श्री गुरुग्रंथ साहिब अंग ७२२ श्लोक १४३०)

बारह माह माझ

भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु।
लख सीगार बणाइआ कारजि नाही केतु।
जितु दिनि देह बिनससी तितु वेलै कहसनि प्रेतु।
पकड़ि चलाइनि दूत जम किसै न देनी भेतु।
छडि खड़ोते खिनै माहि जिन सिउ लगा हेतु।
हथ मरोड़ै तनु कपे सिआहहु होआ सेतु।
जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु।
नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देतु।
से भादुइ नरकि न पाईअहि गुरु रखणवाला हेतु।

(पंचम् श्रीगुरु अर्जुनदेव जी की रचना 'बारह माह मांझ' से)

भादो के महीने के द्वारा गुरुजी कहते हैं, जो जीव-रूपी स्त्रियां भ्रम के कारण भूली हुई है, उनका द्वैत में प्रेम लगा है। यद्यपि लाख प्रकार के शृंगार बनाए हैं अर्थात् अगणित प्रकार से अपने आपको सुसज्जित किया है, तो भी सब कुछ निष्फल है। जिस दिन देह नष्ट हो जाएगी, उसी समय लोग प्रेत कहेंगे। (दुष्कर्म करनेवालों को) यमदूत पकड़कर यमपुरी भेज देंगे और किसी के साथ भेद नहीं करेंगे। जिन सम्बंधियों के साथ नेह लगा है, वे एक क्षण में ही ममत्व छोड़कर खड़े हो जाएंगे। जीव हाथ मलेगा, उसका शरीर यमराज के भय से कांपेगा और उसका रंग काला हो जाएगा। जीव जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, श्ह शरीर कर्मों का खेत है। नानक कहते हैं, जो प्रभु की शरण को प्राप्त हुए हैं, उन्हें वह प्रभु चरण-रूपी जहाज देता है। जिनके प्रेम का गुरु रक्षक है, वे नरक में नहीं डाले जाते। ●

सम्पादकीय

अमर शहीदां ने सिर दे के

-डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

लगभग पाँच दशक पहले की बात है। हमारे गाँव मुकन्दपुर में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखा प्रारम्भ हुई थी। उन दिनों शाखा में एक गीत गाया जाता था ।

'अमर शहीदां ने सिर दे के बन्निया मुढ आजादी दा
आजादी है असल नतीजा उहनां दी कुरबानी दा'

जिस का सरल भाषा में अर्थ है कि आजादी के संघर्ष की शुरुआत शहीदों ने अपना सिर देकर की। जिस स्वतंत्रता का आनन्द हम भोग रहे हैं, वह दरअसल उन्हीं शहीदों के आत्म बलिदान का परिणाम है। भारत में यह स्वतंत्रता संघर्ष कब प्रारम्भ हुआ और किन-किन शहीदों ने इसके लिये अपने प्राण न्योछावर किये ? इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत मुश्किल है। वैसे भी जिन लोगों ने स्वतंत्रता की देवी के चरणों में सीस काट कर रख दिया उन्होंने कभी यह कामना तो नहीं की होगी किसी दिन उनके नामों की फहरिस्तें बनाईं जायें और उनका स्मरण किया जाये। एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिये कि भारत पर जितने आक्रमण हुये उसका पहला प्रहार पंजाब-सिन्ध की ओर से ही हुआ, यही कारण है कि पंजाब को हिन्दुस्तान की खड्ग भुजा कहा जाता है। जाहिर है कि जब हमले पंजाब पर हुए तो उसका पहला उत्तर भी पंजाब ने ही दिया। इतिहास में बहुत पीछे जायें तो पंजाब पर यूनानियों का आक्रमण, जो सिकन्दर के नेतृत्व में हुआ था, भीषण और पुराना कहा जा सकता है। यह आक्रमण इसलिये भी भयानक था क्योंकि इसका नेतृत्व करने वाला सिकन्दर विश्व विजेता बनने का सपना लेकर चला था और रास्ते के सब देशों को रौंदता हुआ आया था। उसकी मंशा पंजाब को पराजित कर सारे हिन्दुस्तान पर कब्जा करने की थी। लेकिन इस हमले में सिकन्दर को अपने उद्देश्य में असफल होकर वापिस लौटना पड़ा । पंजाब में उसका सामना पंजाब के बहादुर सपूत पोरस महान से हुआ और ऐसा माना जाता है कि पोरस से पराजित होकर सिकन्दर का आगे बढ़ना रुक गया और उसे वापिस लौटना पड़ा। ऐसा भी कहा जाता है कि इस लड़ाई में सिकन्दर घायल हो गया था और बाद में उसकी मौत भी इन्हीं घावों के कारण हुई।

इसके बहुत साल बाद सिन्ध की राजधानी कराची, जो उन दिनों देवल कहलाती थी, पर मोहम्मद बिन कासिम की इस्लामी सेनाओं ने हमला किया। यह घटना 632के आसपास की है। अरबों में इस्लाम का नया नया प्रादुर्भाव हुआ था और अरब भी सिकन्दर की तरह विश्व विजेता बनना चाहते थे। सिन्ध के राजा दाहिर सेन ने इन आक्रमणों का मुँह तोड़ जबाव दिया। उनका पूरा परिवार ही इस युद्ध में शामिल हो गया। यदि दाहिर सेन इस्लाम स्वीकार कर लेते तो इस युद्ध से भी बच सकते थे और अपना राज्य भी बचा सकते थे। लेकिन उन्होंने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर प्राण न्योछावर कर देना ज्यादा अच्छा समझा बनिस्वत इस्लाम स्वीकार करने के। पोरस के बाद राजा दाहिर सेन का नाम पंजाब-सिन्ध के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जायेगा।

लेकिन राजा दाहिर सेन के पराजित हो जाने एवं रणभूमि में शहादत को प्राप्त हो जाने के बाद तो पंजाब पर मानों इस्लामी सेनाओं के निरन्तर आक्रमण शुरु हो गये। इन आक्रमणकारियों में सबसे अन्त में आने वाले मध्य एशिया के मंगोल थे, जिन्होंने पंजाब को परास्त करने के बाद भारत के शेष हिस्सों पर भी विजय प्राप्त की । यही मंगोल भारत में आने के बाद मुगल कहलाये । पंजाब में इन मुगलों से भीषण संघर्ष हुआ। वीर हकीकत राय जो जम्मू के नजदीक स्यालकोट के रहने वाले थे, ने उस कच्ची उम्र में भी इस्लाम को स्वीकार करने की बजाय प्राण न्योछावर करना श्रेयस्कर समझा। इसी कालखंड में दशगुरु परम्परा का जन्म हुआ, जिसकी शुरुआत श्री नानक देव जी ने की। इस परम्परा में दश गुरु हुये जिन्होंने अपनी यात्राओं से सारे भारत को मथ डाला। इस दश गुरु परम्परा के पंचम् और नवम् गुरु के लासानी आत्म बलिदान ने भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पन्नों की रचना की। लेकिन दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी ने तो इतिहास की धारा ही बदल दी। उन्होंने भारत के अधिकांश हिस्सों पर कब्जा कर चुके विदेशी आक्रमणकारी का मुकाबला करने के लिये वैशाखी के दिन आनन्दपुर साहिब में राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया, जिसके लिये देश भर से लोगों को निर्मंत्रित किया गया। उन दिनों भी जब विदेशी शासकों का अत्याचार और दमन चरम सीमा पर था, कहा जाता है, लगभग एक लाख लोग देश के सभी हिस्सों से एकत्रित हुये थे। गुरु जी ने विदेशी आक्रमणकारियों की स्थापित राज्यसत्ता से लोहा लेते हुये अपने चारों पुत्रों का बलिदान दे दिया। उनके पुत्र देश और धर्म की रक्षा करते हुये शहीद हो गये। उसके बाद आये अंग्रेज। उनका धीरे-धीरे भारत के अधिकांश हिस्सों पर कब्जा हो गया। (शेष पेज 8 पर)

दल भंजन गुरु सूरमा

- गुरचरन सिंह गिल

बालक श्री हरिगोविंद जी ने अपनी आंखों से जहांगीर बादशाह के सैनिकों के घर पर धावा बोलते, सबको आर्तंकित करते तथा पूज्य पिता श्री गुरु अर्जुनदेव जी को गिरफ्तार करके लाहौर ले जाते देखा था। श्री गुरु अर्जुनदेव जी को दी जाने वाली नृशंस यातनाओं के समाचार भी नित्यप्रति बालक तक पहुंचते रहे और आखिर एक दिन गुरुजी की शहादत का हृदय-विदारक समाचार भी आ ही गया। आततायी मुगल शासकों से और कुछ अपेक्षित ही क्या था ?

तब बालक हरि गोविंद की आयु मात्र ग्यारह वर्ष की थी। उसका हृदय चीत्कार कर उठा। एक पुण्यात्मा के साथ यह क्रूरता। एक महान संत के प्रति यह नीचता, यह पाश्विकता। मात्र इसलिए कि वे मुस्लिम धर्मांत्मा के सम्मुख झुके नहीं, इस्लाम कबूल करने अथवा इस्लाम के पैगम्बर की प्रशंसा के कुछ राग पवित्र श्री गुरुग्रन्थ साहिब में शामिल करने से इन्कार कर दिया।

'अत्याचारी और अन्यायी शासकों के साथ लोहा लेना ही होगा।' बालक हरि गोबिन्द ने निश्चय कर लिया। अत: पिता के बलिदान के बाद जब उन्हें गुरु-गद्दी पर आसीन करने के लिये तिलक किया जाना था, तो वे कमर में दो तलवारें लटका कर आए और घोषणा की कि ''सैली (संत पुरुषों के सिर पर धारण की जाने वाली उनी डोरी) तथा माला के स्थान पर अब खड्ग धारण करने का समय आ गया है। हृदय में चाहिए भक्ति और हाथ में तलवार। मेरी यह दोनों तलवारें मेरी दो प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के लिए है। एक हैं पूज्य पिता पर किए गए अत्याचारों का बदला लेने के लिए और दूसरी, विदेशी मजहब के प्रवर्तक के चमत्कार नष्ट करने के लिए।''

''प्यारे शिष्यों ।'' उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित होकर उन्होंने कहा, ''भक्ति के साथ शक्ति के महत्व को भी पहचानो। शास्त्र धारण करो। यह जीवन संघर्षमय है। धर्म रक्षा हेतु आवश्यकता होने पर मरने से कदापि न डरो। धन की बजाए घोड़ो और शास्त्रों के रूप में दी जाने वाली आपकी भेंटें अधिक सराहनीय होंगी।''

बस फिर क्या था। शिष्यों में नवजागरण की लहर दौड़ गई। भक्ति और शक्ति का संयोग होने लगा। शास्त्र संग्रह और युद्ध-अभ्यास शुरु हो गया। सर्वत्र वीर-रस का संचार होने लगा।

गुरुजी ने पूर्व गुरुओं के परम्परागत फकीरी लिबास का परित्याग कर राजसी वस्त्र धारण करने प्रारम्भ कर दिये। उन्होंने अमृतसर में एक छोटे किले 'लोहगढ़' का निर्माण करवाया। हरिमन्दिर के सामने काफी उंचा चबूतरा बनवाया, जिसका नाम ''अकाल-तख्त'' रखा। गुरुजी यहां प्रात:-सायं दोनों समय दरबार लगाते तथा धार्मिक प्रवचनों के स्थान पर वीर रस के राग गाये जाते। इससे सारे शिष्य समुदाय में निर्भयता तथा क्षात्रवृति के भाव हिलोरे लेने लगे। उनकी जीवन-शैली में परिवर्तन आने लगा। गुरुजी की लोकप्रियता तथा शक्ति में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होने लगी। जनमानस में वे 'सच्चे पातशाह' के नाम से विख्यात होने लगे, जिसका निहित अर्थ था कि दिल्ली का बादशाह झूठा है और गुरु जी ही सच्चे बादशाह हैं।

अनेक वीर उनकी सेवा में एकत्रित होने लगे। माझा (रावी तथा व्यास नदियों के बीच का इलाका), दोआबा (व्यास व सतलुज नदियों के बीच का इलाका) तथा माला (पटियाला, नाभा, जींद, फरीदकोट, फिरोजपुर तथा लुधियाना आदि जिले) से पांच सौ आत्मोत्सर्गी युवकों ने आकर गुरुजी से निवेदन किया ''हमारे पास आपकी सेवा में भेंट करने के लिये अपने जीवन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वेतन के तौर पर भी हमें केवल धर्मोपदेश के रूप में आपका आशीर्वाद ही चाहिए। अत्याचारी शासकों के विरुद्ध संघर्ष में हम अपने प्राण तक न्यौछावर करने के लिए तत्पर है।'' गुरू जी ने उनमें से प्रत्येक को एक-एक घोड़ा और शस्त्र प्रदान किए तथा प्रसन्नतापूर्वक अपनी सेना में भर्ती कर लिया। गुरुजी ने उनमें से 52 को अपने अंगरक्षक के रूप में अंगीकार किया। विधीचन्द, पिराना, जेठा, पेरा तथा लंगाहा को एक-एक सौ घुड़सवारों का प्रमुख नियुक्त कर दिया।

गुरु जी के बढ़ते प्रभुत्व के समाचार बादशाह जहांगीर तक पहुंच रहे थे। वह आशंकित हो उठा। उसने गुरु जी को काबू करने के लिए शीघ्र ही कुछ उपाय करने की सोची और अपने दो अधिकारियों बेग तथा बजीर खां को गुरु जी को पकड़कर लाने का आदेश दिया।

दोनों अधिकारियों ने अमृतसर पहुंच कर गुरुजी से आदरपूर्वक कहा, ''बादशाह जहांगीर ने आपको दिल्ली बुलाया है। हम आपको गिरफ्तार करने का दुस्साहस तो नहीं कर सकते। हां, विनती अवश्य करते हैं कि आप हमारे साथ दिल्ली चले।''

गुरु जी उनके आशय को समझ गये। माता गंगा शंकित हो उठीं, 'जब मेरे पतिदेव (गुरु अर्जुनदेव) को इसी बादशाह ने लाहौर बुलाया था तो वे फिर कभी लौट कर न आए। मेरे जीवन की सारी खुशियां समाप्त हो गई। अब अगर मेरा इस क्रूर बादशाह के बुलावे पर दिल्ली गया तो न मालूम क्या हो? तथापि गुरु जी ने दिल्ली जाने का ही निर्णय किया।

दिल्ली में बादशाह से गुरु जी की भेंट होने पर बादशाह

ने उनके विरूद्ध के ढेर लगा दिये। गुरु जी ने बड़ी मुधर वाणी तथा आत्मविश्वासपूर्वक सभी आरोपों का खण्डन किया। बादशाह से धर्म सम्बन्धी चर्चा भी बादशाह ने प्रकटत: तो अपने आरोप वापस ले लिये, किन्तु मन में कुछ और वंचित रहा।

बादशाह को मालूम था कि गुरु हरि गोबिन्द शिकार खेलना पसंद करते उसने उन्हें अपने साथ शिकार खेलने के लिये चलने का निमंत्रण शिकार के दौरान एक शेर से सामना हो गया, जो बादशाह की ओर साथी शिकारियों ने गोलियां और तीर चलाए किन्तु वह शेर के और से निकल गये। शेर अब और अधिक निकट आ गया था। डर के मारे मानो लकवा मार गया। उसने दयनीय दृष्टि से गुरुजी की तुरंत अपने घोड़े पर से कूदे और ढाल-तलवार लेकर बादशाह और शेर के बीच में आ गए। शेर बादशाह पर झपटने ही वाला था कि गुरु जी ने तलवार का एक हाथ ऐसा जमाया कि वह जमीन पर धाराशायी हो गया। बादशाह ने अपना भाग्य सराहा कि उसके साथ गुरु जी थे, जिन्होंने उसके प्राणों की रक्षा कर ली, अन्यथा शेर उसे निश्चित ही समाप्त कर देता।

उसने गुरु जी के गुणों के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। किन्तु उनकी प्रतिभा और शूरवीरता आदि का साक्षात्कार उसे इन दिनों के निकट सहवास से ही हुआ। उसने देखा कि इस स्वल्प आयु में ही गुरू जी शरीर एवं मन की दृष्टि से अति बलवान हैं, तलवार के धनी तथा श्रेष्ठ घुड़सवार हैं। उनके तीर का निशाना कभी चूकता नहीं। उनमें एक ही बार में शेर को मार डालने का प्रबल सामर्थ्य है। उनके सैनिक निर्भयतापूर्वक तथा प्राणों का मोह त्यागकर आज्ञा-पालन हेतु सदैव तैयार रहते हैं। उसने अनुभव किया कि जन साधारण में प्रचलित उनका 'सच्चा पातशाह' नाम सचमुच ही बड़ा सार्थक है।

वह तड़प उठा। उसने सोचा, गुरु तो दिन-ब-दिन शक्तिशाली बनता चला जा रहा है। पूर्व इसके कि वह अधिक शक्ति अर्जित कर ले, कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए। वह श्री गुरु अर्जुन देव जी के प्राण लेकर भी संतुष्ट न हुआ था। उन पर किये दो लाख रुपये जुर्माने की वसूली अब उसने गुरु हरि गोविन्द जी से करने का आदेश दिया और इस बहाने से उन्हें गिरफतार करके दूर ग्वालियर के किले में बंद कद दिया। समय की नजाकत को देखते हुए गुरू जी ने कोई प्रतिरोध न किया। इस समय उनकी आयु मात्र चौदह वर्ष की थी।

गुरु जी के ग्वालियर किले में पहुंचने पर वहां का वातावरण ही बदल गया। जहांगीर ने सोचा था कि उन्हें कैद करने से उनकी प्रतिष्ठा व मान्यता कम हो जाएगी। किन्तु हुआ इसके सर्वथा विपरीत। किला अन्दर व बाहर दोनों ओर से एक तीर्थ के रूप में जाना जाने लगा।

किले के अन्दर गुरू जी को वहां कैद 52 राजाओं के साथ संपर्क स्थापित करने का अवसर मिला, जिन्हें जहांगीर ने इसलिए बंदी बना रखा था कि उन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। समान हेतु समान आकांक्षा एवं समान उद्देश्य के कारण उन सबके साथ हिल-मिल जाने का गुरू जी को अच्छा मौका मिला। इससे जहां बादशाह जहांगीर के साथ टक्कर लेने के गुरूजी के संलल्प को और अधिक बल मिला, वहां सभी बन्दी राजागण भी गुरू जी के आध्यात्मिक जीवन से प्रभावित हुए बिना न रहे, क्योंकि जेल जीवन में भी गुरू जी की दिनचर्या में प्रात: व सायं के हरिकीर्तन का विशेष महत्व रहता था।

दूसरी ओर, किले के बाहर भी सम्पूर्ण हिन्दू समाज में गुरू जी के प्रति श्रद्धा में वृद्धि हुई। सैकड़ों और हजारों की संख्या में श्रृद्धालुओं के जत्थे के जत्थे पैदल पंजाब से ग्वालियर के किले की ओर कूच करने लगे। चारों ओर फैले जंगल के बीचो-बीच लगभग 300 फुट उंची पहाड़ी पर स्थित था यह प्राचीन किला। इसके गिर्द की 30-35 फुट उंची दीवार एक दीर्घकाय पहरेदार के समान खड़ी थी और तिस पर था सैनिकों का भारी जमाव। गुरूजी के दर्शनों के लिये लालायित भक्तजन वहां पहुंचते। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शनों के अभाव में किले के बाहर ही गुरू चरणो का ध्यान कर किले की दीवार को नमस्कार करते हुए अपना माथा झुकाने में अपनी धन्यता मानते और वापस चले जाते। यह क्रम तब तक निरंतर चलता रहा जब तक अंत में गुरु जी को मुक्त न कर दिया गया।

जिस दिन गुरुजी रिहा होकर अमृतसर आये, वह संयोग से दीपावली का दिन था। लोगों को एक तो त्यौहार की खुशी थी, दूसरी ओर यह खुशी थी कि अब नित्य ही गुरु जी के दर्शनों तथा उपदेशात्मक पान का सुअवसर प्राप्त होगा। अत: बड़े हर्षोल्लास के साथ दीपक प्रजवलित किए गए।

गुरु जी ने अब पुन: अपनी सैनिक गतिविधियां प्रारंभ कर दीं किन्तु अधिक चौकसी तथा सावधानी के साथ। शीघ्र ही उनके पास आठ सौ घोड़े तथा विपुल संख्या में घुड़सवार एकत्र हो गए। आग्नेयास्त्रों से लैस साठ जवान भी हर समय उनकी सेवा में तत्पर रहने लगे।

जहांगीर की कैद से अपनी रिहाई और जहांगीर की मृत्यु के बीच के 16 वर्षों में गुरू जी ने समाज में अपने आध्यात्मिक तथा राजसी प्रभुत्व को सुदृढ़ किया। बादशाहों की भांति कलगी भी धारण करनी प्रारंभ कर दी। पूरे पंजाब का दौरा किया और उत्तरप्रदेश में भी पीलीभीत तक प्रचारार्थ गए। वे कश्मीर भी गये। अपने इस प्रवास में उन्होंने अनेक गुरुद्वारों का निर्माण करवाया, जहां शिष्यगण भक्ति के साथ ही शक्ति मार्ग का भी

प्रशस्त करने लगे। सभी शिष्यगण गुरूजी का अनुसरण करते हुए संगठित होने लगे। वहां से अमृतसर की ओर उनकी वापसी के दौरान बिलासपुर के राजा ने हिमालय की तराई में स्थित एक भूखंड गुरुजी को भेंट किया, जो सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व का था। गुरु जी ने बाद में यहीं 'कीरतपुर' नाम से अपने कार्य-केन्द्र का निर्माण करवाया।

जहांगीर की मृत्यु के बाद उसके बेटे शाहजहां ने दिल्ली का शासन संभाला। अगले ही वर्ष उसका अमृतसर के आसपास के क्षेत्र में शिकार के लिये आना हुआ। उसके सहायक शिकारियों के पास एक सफेद बाज था, जो उन्होंने किसी जानवर के शिकार के लिए उसके पीछे छोड़ा। बाज उड़ता-उड़ता संयोगवश गुरु हरि गोविन्द के शिकारियों के हाथ लग गया। इस अवसर पर दुराभिमानी शाही शिकारियों की ओर से प्रकट किए गये अहंकारपूर्ण व्यवहार की चुनौती को स्वीकार करना आवश्यक मानकर उन्होंने इसे बादशाह के सैनिकों को लौटाने से इंकार कर दिया। गुरु के शिष्यों के अभी पहले जख्म भी हरे ही थे। वे यह नहीं भूले थे कि इसी क्रूर सत्ता के कारण ही गुरु अर्जुन देव जी के प्राण गये थे तथा गुरु हरि गोविन्द को कैद कर लिया गया था। अत: उन्होंने बादशाह के शिकारियों को बाज न लौटाते हुए खाली हाथ वापस भेज दिया। शाहजहां को इसकी जानकारी मिली तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने तुरंत अपने सेनापति मुखलिस खां को आदेश दिया, ''अपने साथ सात हजार सैनिकों की सेना लेकर कूच करो और बाज के साथ ही गुरु को भी पकड़ लाओं''।

बस लड़ाई का सूत्रपात होते देर न लगी। गुरु जी ने लोहगढ़, अमृतसर में पांच सौ यौद्धा नियुक्त कर दिए। मुखलिस खां ने आते ही धावा बोल दिया। उधर सिख सैनिक भी तैयार थे। तीन दिन तक लगातार युद्ध होता रहा। अन्तत: मुखलिस खां गुरु जी के हाथों मारा गया। उसके साथ कितने ही शाही सैनिक भी युद्ध क्षेत्र में काम आये। जो बच गये, वे अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। जिस स्थान पर यह युद्ध हुआ, वह अमृतसर से दक्षिण की ओर लगभग चार मील पर स्थित है तथा संग्राण अर्थात् संग्राम साहिब के नाम से जाना जाता है।

दूसरा युद्ध रूहेला श्री हरि गोबिन्दपुर के पास कुछ जमींदारों के साथ लड़ना पड़ा। इसमें भी विजय गुरु जी के ही हाथ लगी।

दो वर्ष बाद गुरु जी तीसरा युद्ध शाही सेना के साथ हुआ। कारण यह हुआ कि ताराचन्द तथा वख्त मल नामक दो मसन्द काबुल से दो बहुमूल्य घोड़े गुरु जी को भेंट करने के लिए ला रहे थे कि रास्ते में शाहजहां के कर्मचारियों ने इन्हें इनसे छीन लिया। इन दोनों ने अमृतसर आकर सारी घटना गुरु जी से निवेदन की। इसे सुनकर गुरूजी के एक सूरमें भाई विधीचन्द ने मन में ठान लिया कि जैसे भी होगा, वह इन दोनो घोड़ो को लाहौर से वापस लाकर गुरुजी को भेंट करेगा। इन घोड़ो के नाम थे- दिलबाग और गुलबाग।

श्री गुरु हरि गोविन्द जी के आकर्षक तथा प्रखर व्यक्तित्व के गिर्द कैसे-कैसे अदभुत वीर तथा निडर एवं कुशल लोग आ एकत्र हुए थे, इसकी एक झलक भाई विधी चन्द के उदाहरण से मिलती है।

विधीचन्द लाहौर जा पहुंचा। रावी नदी के किनारे जाकर उसने बढ़िया किस्म की घास काटी और उसका गठ्ठर बांधकर किले के द्वार के पास पहुंचा। अश्वशाला के प्रमुख को वह घास बहुत पसन्द आई। उसने उस गटठ्र को खरीदकर उसे अन्दर अस्तबल में डालने के लिये कहा, जहां पर वह दोनों काबुली घोड़े बंधे थे। इसके बाद तो बिधीचन्द का यह नित्य का ही क्रम हो गया। कुछ दिनों के बाद अश्व-प्रमुख ने उसे अपने पास स्थायी नौकरी की पेशकश की, जिसे उसने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। थोड़े ही समय बाद बिधीचन्द की पदोन्नति हो गई। अब घोड़ों की देखरेख व सफाई आदि की जिम्मेदारी भी उसे ही सौंप दी गई। अन्धा क्या मांगे ? दो आंखे । बिधीचन्द को और क्या चाहिए था ? यही उसकी सबसे बड़ी इच्छा थी कि किसी प्रकार उसे दोनों घोड़ों की निकटता प्राप्त हो। उसने अपने मधुर स्वभाव और नम्रता आदि गुणों से अस्तबल के सभी कर्मचारियों का मन मोह लिया। इस प्रकार किले का हर व्यक्ति बिधीचन्द के प्रशंसक बन गया। नौकर उससे प्रसन्न थे। अधिकारी उस पर विश्वास करने लगे थे। घोड़े भी उससे सुखी थे।

उन दोनों घोड़ों के लिये सवा-सवा लाख रुपये की जीनें बनवाई गई थीं। बिधीचन्द ने यह भी पता लगा लिया कि वह जीनें कहां रखी जाती हैं और गोदाम को धाबी कहां होती है। फिर एक रात जब सभी लोग शराब के नशे में धुत्त पड़े थे, तो उसे अच्छा मौका हाथ लगा। उसने गोदाम से जीन निकालकर दिलबाग पर डाली, फिर उसे किले की दीवार के ऊपर से रावी नदी में कूदाकर ले भागा और रातों-रात लाहौर के इलाके को पार कर लिया। दूसरे दिन वह गुरुजी के पास गया और उन्हें वह घोड़ा भेंट कर दिया।

भाई बिधीचन्द ने लाहौर के किले में रहते हुए अपना नाम 'केसरा' रखा था। यह साहसपूर्ण कार्य करके उसने सचमुच ही अपना केसरीपन शूरवीरता प्रकट किया था। प्रात: जब घुड़साल प्रमुख को इस घटना की जानकारी मिली तो वह गश खाकर गिर पड़ा। उधर शाहजहां ने भी जब सारा वृतांत सुना, तो उसके आश्चर्य मिश्रित दु:ख का ठिकाना न रहा।

इधर भाई बिधीचन्द भी दु:खी था, क्योंकि जिस घोड़े दिलबाग को वह अपहृत करके लाया था, उसने अपने साथी गुलबाग की जुदाई में दाना-चारा खाना छोड़ दिया था। इसलिए अब किसी न किसी उसके साथी को भी लाना आवश्यक हो गया था। अत: वह पुन: लाहौर की ओर चल दिया।

वह सोचने लगा कि क्या उपाय लड़ाया जाए। अब उसने एक ज्योतिषी का वेश धारण किया। कुछ ही दिनों में उसकी ज्योतिरूप विद्या की ख्याति शाहजहां तक जा पहुंची, जो अभी तक लाहौर में ही था। उसे अपनी बातों से शाहजहां को इस हद तक प्रभावित किया कि शाहजहां ने स्वयं ही कहा कि अगर आप हमारे चोरी हुए घोड़े का कुछ पता दे सकें तो आपको इनाम से मालामाल कर दिया जायेगा।

''जहापनाह।'' भाई बिधीचन्द ने उत्तर में कहा, ''आप मुझे वह स्थान दिखा दीजिये जहां से घोड़ा चोरी हुआ है। मैं आपको चोर का नाम व अता-पता बता दूंगा। किन्तु उसे लाना मेरे सामर्थ्य में नहीं है।

''ठीक है,'' बादशाह बोला ''आप हमें चोर के विषय में बता दें। उसे लाने की व्यवस्था हम स्वयं कर लेंगे।'' चुनांचे ज्योतिषी वेशधारी बिधीचन्द को साथ ले जाकर वह स्थान दिखा दिया गया। वहां अब गुलबाग अकेला और उदास मौजूद था।

आश्चर्य की बात है कि बिधीचन्द को इस स्वांग में और कोई तो क्या पहचानता, वह अश्व प्रमुख भी न पहचान सका, जिसके साथ वह कई मास तक रहा था। ज्योतिषी रूपधारी बिधीचन्द ने कहा, ''जीन को इस घोड़े पर कस दो। मैं सब कुछ बता दूंगा। किन्तु वह सब मुझ पर उसी मुहूर्त में प्रकट होगा, जिसमें घोड़ा चोरी हुआ है। आप मुझे किसी एकांत कोठरी में बिठा दें ताकि कुछ समय ग्रहचाल आदि बातों पर भलीभांति विचार कर संकू।''

ऐसा ही किया गया। कुछ समय के पश्चात् ज्योतिषी जी घोड़े के पास पहुंचे। उस पर जीन तो कस दी गई थी। ज्योतिषी जी घोड़े पर सवार हुए और बादशाह के महल के पास आकर आवाज दी, ''जिसने तुम्हारा पहला घोड़ा चोरी किया, वही अब दूसरा घोड़ा भी ले जा रहा है। इससे तुम समझ जाओगे कि पहला घोड़ा किस तरह से ले जाया गया था। चोर का पता लिख लो- मैं बिधीचन्द हूं और श्री गुरू हरगोविन्द जी का विनम्र सेवक हूं। यह घोड़े काबुल से गुरू जी के लिये ही लाये गए थे। अब उनकी चीज उन्हीं के पास पहुंच जाएगी।'' ऐसा कहकर बिधीचन्द ने घोड़े को एड़ लगाई और उसे किले की दीवार के उपर से छलांग लगाने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार वह दूसरे घोड़े को भी भगा ले जाने में सफल हो गया। तब बादशाह व उसके सैनिक देखते रह गए।

अपने प्राणों को दांव पर लगाकर बिधीचन्द ने यह जो कारनामा कर दिखाया था, उसके लिए उसकी गुरु-भक्ति सर्व प्रकार से सराहनीय है। वह वास्तव में ही शूरवीर था और इस कारण गुरु जी को अतिप्रिय भी था।

घोड़ों का इस प्रकार अपहरण होने से बादशाह शाहजहां झल्ला उठा। उसने लल्ला बेग पठान को घोड़े वापस लाने तथा गुरू हरिगोविन्द को कैद करके लाने का हुक्म दिया। लल्ला बेग के साथ उसका भाई कमर बेग, दोनों पुत्र कासम बेग और शम्स बेग और भांजा काबुली बेग भी युद्ध के लिये चल पड़े। लल्ला बेग की आज्ञा से कमर बेग सात हजार सैनिक लेकर आगे बढ़ा।

इधर गुरु जी ने भी शाही सेना के मुकाबले की तैयारी कर ली थी। एक हजार सैनिकों को साथ लेकर उन्होंने राय जोध को उसका सामना करने के **शेष अगले अंक में**

(सम्पादकीय का शेष)

एक बार फिर पंजाब के लोगों ने अँगड़ाई ली। अंग्रेजी साम्राज्य से लड़ते-लड़ते न जाने कितने लोगों ने अपनी जान की बाजी लगा दिया। नाम गिनाने की जरुरत नहीं। लाला लाजपत राय, भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु के नाम तो घर घर में गूँजते ही हैं। उधमसिंह और मदन लाल ढींगरा ने तो लंदन जाकर गोरों के अत्याचारों का जबाव दिया। कामागाटामारु ने नया इतिहास बनाया।

पंजाब अंत तक विदेशी इस्लामी आक्रमणकारियों से लड़ता रहा लेकिन शायद साथ ही साथ वह भीतर ही भीतर एक दीमक का शिकार भी होता रहा। पंजाब का एक बहुत बड़ा, हिस्सा भय से या लालच से, मैदान से हट गया और विदेशी आक्रमणकारियों के साथ मिल कर इस्लाम में ही प्रवेश कर गया। भाई-भाई से बेगानी ही नहीं हुआ, शत्रु बन गया। पंजाब के पश्चिमी भाग का वही हिस्सा बाद में जिन्नाह के चक्रव्यूह में फँस कर अलग हो गया और पाकिस्तान का हिस्सा बन गया । लेकिन एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यदि पन्द्रहवीं शताब्दी में यह दश गुरु परम्परा न शुरु हुई होती तो सिकन्दर के वक्त से आक्रमणों को झेलता और परास्त करता पंजाब मुगलों के अत्याचारों के आगे दम तोड़ देता और सारे का सारा इस्लाम में चला गया होता, जिस प्रकार सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्त इस्लाम की शरण में चले गये। यह दशगुरु परम्परा ही थी जिसने पूर्वी पंजाब को इस्लाम में जाने से बचा लिया। लेकिन असली प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है ? क्या बाबर के समय शुरु हुई यह लड़ाई समाप्त हो चुकी है या अभी जारी है? वीरां दी कुर्बानी का जो असल नतीजा है, उसको संभाल कर रखने की जरुरत है।●

श्री गुरु रामदास जी

- महिन्दर सिंह बाली

श्री गुरु अमरदास जी के सन् 1574 में स्वर्गवास के पश्चात श्री गुरु रामदास जी (पूर्व नाम जेठा जी) सिखों के गुरु रुप में गुरुपद पर प्रतिष्ठित हुए। श्री गुरु अमरदास जी के दोनों पुत्रों में से श्री मोहरी ने श्री गुरु रामदास जी को श्री गुरु पद में स्वीकार कर लिया। किन्तु दूसरे पुत्र श्री मोहन जी श्री जेठा जी को गुरुपद पर प्रतिष्ठित करने के विरुद्ध थे। कालान्तर में यद्यपि श्री मोहन जी और श्री गुरु रामदास जी में मेल हो भी गया पर वह सदैव ऊपरी सतह तक ही बना रहा। अन्त: करण की गहराई तक नहीं पहुंच सका।

गुरुपद का सांसारिक रूप में महत्व-

प्रारम्भिक काल में गुरु पद को केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक महत्व था किन्तु धीरे-धीरे उस पद को (अर्थ+अधिकार एहिक के कारण) महत्व भी प्राप्त होने लगा।

अब एक वाक्प्रचार भी प्रचालित हो गया है कि -वैभव और प्रभुत्व (सत्ता) श्री गुरुनानक देव जी से बारह कोस दूर थे। श्री गुरु अंगद जी से वह छह कोष दूर रहे तो श्री गुरु अमरदास जी के समय वे गुरु ग्रह की देहलीज तक आ गये और श्री गुरु अर्जुनदेव जी के घर के अन्दर तक आ गये। गुरुपद के साथ-साथ जब धन सम्पत्ति भी आने लगी तब उत्तराधिकारियों में जिनको गुरुपद के लाभ से वंचित हो पड़ता था उनमें वैमनस्य बढ़ने लगा।

अमृतसर-श्री गुरु रामदास जी द्वारा अमृतसर नगर बसाया। श्री गुरु अमरदास जी ने अमृतसर की नींव डाली। तालाब के निर्माण का कार्य भाई बुड्ढ़ा जी को सौंपा गया था। इस समय तक किसानों के साथ-साथ व्यापारी भी श्री गुरु नानकजी के विचारों से प्रभावित होकर नानक पंथ में आने गले थे और उनका भी विभिन्न कार्यों में सहयोग प्राप्त होने लगा था। तालाब बनवाना,नये गांव बसाना आदि काफी खर्चीले काम इन्हीं लोगों के सहयोग से संभव हो सके थे। नये गांवों में कारीगर को छोटे व्यापारियों के कारण गुरुघर का महत्व अपने आप ही बढ़ते गये।

श्री चन्दजी से भेंट-श्री गुरु नानकदेव जी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचन्द जी कभी भी श्री गुरु अंगददेव जी से अथवा श्री गुरु अमरदास जी से मिलने नहीं आये किन्तु श्री गुरु रामदास जी से मिलने के लिए गोविन्दवाल आये थे। जब श्रीचन्दजी गोविन्दवाल की सीमा तक आ पहुंचे तब श्री गुरु रामदास जी ने अपने परम गुरु श्री गुरु नानकदेव जी के पुत्र का 500 रु. और मिठाई द्वारा हार्दिक स्वागत किया था। श्री श्रीचन्दजी ने श्री गुरुरामदास जी से उनकी लम्बी दाढ़ी देखकर कहा ''आपने तो बड़ी लम्बी दाढ़ी रखी है।'' तो श्री गुरु रामदास जी ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया कि ''आपके समान साधु संतों की चरण धूल झाड़ने के लिए ही मेरी यह लम्बी दाढ़ी है।'' श्री गुरु रामदास जी ने केवल कहा ही नहीं वरन् तुरन्त ही अपनी लम्बी दाढ़ी से श्री श्रीचन्द के पैरों की धूल झाड़कर अपने कथन को प्रमाणित करते हुए आचरण के द्वारा उत्तर दिया। बड़े ही संकोच के साथ श्रीचन्द जी ने अपने पैर हटा लिए और कहा कि आपमें जो यह कमाल का जादू है उसी के कारण-आपको गुरुपद की प्राप्ति हुई है। यह मेरे पास न होने के कारण मैं अलग फेंक दिया गया हूँ।

विचारों का प्रसार-सिख मत का प्रचार करने के लिए श्री गुरु रामदास जी लाहौर गये थे। उन्होंने भाई गुरुदास जी (श्री गुरु अमरदास जी के छोटे भतीजे) को आगरा भेजा। श्री हरिराम गुप्ता जी ने सिखों की संख्या के संबंध में जानकारी देते समय कहा है कि श्री गुरु रामदास जी के काल में सिखों की कुल संख्या 84 थी। यह संख्या उन्हें कैसे ज्ञात हुई इस संबंध में किसी प्रकार का विवरण उन्होंने नहीं दिया है। श्री गुरु नानकदेव जी के समय से चली आ रही सिख संगतें श्री गुरु अमरदास जी द्वारा स्थापित मंजी पद्धति और सिख गुरुओं द्वारा सार्वजनिक सुख सुविधाओं की दृष्टि से पूर्ण किये गये कार्यों को देखते हुए यह संख्या बहुत ही कम है।

श्री गुरु रामदास जी की काव्य रचनाए-श्री गुरु अमरदास जी की निन्दा करने वालों अथवा आलोचना करने वालों का आपने कड़ा विरोध अपनी रचनाओं में किया है। इस बात से स्पष्ट होता है कि उस काल में (श्री गुरुनानक विचारों का) लोग इसका अधिक विरोध करते होंगे कि स्वयं श्री गुरुदेव जी तक को इसका खंडन करना पड़ता होगा। आद्रिग्रंथ में श्री रामदास जी की 679 रचनाएं हैं। ''सुही छाँल'' नामक आपकी रचना विवाह के समय और वधु-वर जब श्री गुरुग्रंथ साहिब के फेरे लगाते हैं तब गाई जाती है। ''वडहान्स घोडियाँ'' नामक आपकी काव्य रचना भी विवाह के समय गाई जाती है।

श्री गुरु रामदास जी ने तीर्थयात्रा के विषय में बड़ा ही मार्मिक विश्लेषण किया है। इस विषय में अपना अभिप्राय व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि जिन स्थानों पर ऋषि-मुनियों ने अपना सम्पूर्ण जीवन भक्तिभाव पूर्वक तपश्चार्य करते हुए व्यतीत किया है उन स्थानों के प्रति श्रद्धाभाव निरन्तर वृद्धिगत करने के लिए उन्हें तीर्थस्थान कहा जाने लगा है। इसलिए तीर्थयात्रा करते समय तीर्थस्थानों में नाम (ईश्वर) महिमा का गायन करना चाहिए। (शेष पृष्ठ 14 पर)

भक्ति का राग, गूंजा अरब के भी पार - देवेन्दर सिंह गुजराल

''आप कैसे फकीर हैं जो? यह अपवित्र चमड़ा क्यों पहन रखा है? यह रस्सी क्यों लपेट रखी है? धर्म-मर्यादा को तिलांजलि क्यों दे दी है?'' पंडित ब्रह्मदास ने प्रश्न किए।

श्री गुरु नानकदेव जी का हर यात्रा में देश कालानुसार अलग-अलग प्रकार का वेश रहता था। अपनी तीसरी यात्रा (प्रारम्भ सन् 1514 ई.) में, जो अब उत्तर दिशा की ओर थी, घूमते हुए वे कश्मीर आये थे। श्रीनगर से पहलगाम जाते हुए मार्ग में मटन नामक स्थान पर उनकी भेंट पं. ब्रह्मदास से हुई थी। इस यात्रा में गुरु जी का वेश ऐसा ही था। सिर और पांव में चमड़ा पहन रखा था। शरीर के गिर्द एक रस्सी लपेटी हुई थी और माथे पर केशर का तिलक शोभायमान था।

गुरुजी ने ब्रह्मदास के प्रश्नों की ओर ध्यान न दिया। भक्ति विभोर अवस्था में आपके श्रीमुख से उच्चारित हुआ, 'हे कर्त्ता पुरुष ! सूर्य और चन्द्रमा को उत्पन्न करके तूने ही उनमें ज्योति प्रविष्ट की है। रात्रि और दिन, दो विरोधी तत्वों को, तूने ही निर्मित किया है। तेरे चरित्र आश्चर्यजनक हैं। तीर्थ आदि में धर्म संबंधी विचारों एवं पुण्य पर्वों पर स्नान आदि का विधान तूने ही किया है। तेरे समान और कोई नहीं है। तेरा वर्णन अकथनीय है। हे प्रभु, तेरे ही तख्त की स्थिति शाश्वत है। शेष सभी वस्तुएं तो आने-जाने वाली क्षणभंगूर हैं।'' (मलार की वार)

पंडित ब्रह्मदास विद्वान ही नहीं, व्यक्तियों का पारखी भी था। अतः उसने गुरुजी की ब्राह्य वेशभूषा का विचार छोड़, उनकी इस ब्रह्मलीन अवस्था से अनुमान लगा लिया कि यह अवश्य ही कोई महान आत्मा है। वह विद्वान अवश्य था, सारे कश्मीर में उसकी विद्वत्ता की धाक थी, किन्तु मन की शांति से आज भी वंचित था। उसे लगा, उसके मन की प्यास इसी महापुरुष के मार्गदर्शन से बुझ सकती है।

''गुरु किसे धारण करूँ?'' कुछ दिन गुरुजी के सहवास में रहने के पश्चात उसने सीधा प्रश्न किया।

''वन में जाने पर तुम्हें चार फकीर मिलेंगे।'' श्री गुरु नानकदेव जी ने उत्तर दिया, ''यही प्रश्न उनसे पूछना। वे तुम्हें गुरु का पता बतायेंगे।'

पंडित ब्रह्मदास ने ऐसा ही किया। उन फकीरों ने एक मंदिर की ओर संकेत करते हुए कहा, ''वहां मिलेगा तुम्हें गुरु।''

ब्रह्मदास उस मंदिर की ओर बढ़ा। वहां उसे एक स्त्री मिली। वह लाल रंग के वस्त्रों में थी और मंदिर की रक्षा कर रही थी। उसने पंडित महोदय का स्वागत करने की बजाय उसे बड़ी निर्दयता से जूतों से पीटना शुरु कर दिया। अच्छी खासी गत बनायी। यह चिल्लाता हुआ उन फकीरों के पास आया और अपनी दुख भरी कहानी सुनायी।

''वह माया-सांसारिक मोह जंजाल है, जिसकी तुम अभी तक कामना करते रहे हो। वहीं तुम्हारी गुरु है। माया में लिपटा व्यक्ति प्रभु-दर्शन नहीं कर सकता। उसने तुम्हें मंदिर प्रवेश से पहले ही पीड़ित कर मंदिर प्रतिमा से दूर रखा। देवता के दर्शन नहीं करने दिये। स्पष्ट है कि तुम में जो मोह-मद और अहंकार भरा है, उसे झाड़ने के लिए तुम्हारी पिटाई की गई है। जाओ पंडित। अहंकार त्यागो, आत्म-निरीक्षण करो।'' फकीरों ने उसे समझाते हुए कहा।

ब्रह्मदास ने विद्वता का जो भार ढो रखा था, माया की मार खाने के बाद, अब उसके अहंकार से वह मुक्त हो चुका था। उसके गर्व का मर्दन हो चुका था। वह गुरुजी की सेवा में उपस्थित हुआ। चरणों में मस्तक नवाया। गुरुजी के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए अनेक ग्रंथों के जो ढेर वह लाया था, उन्हें एक ओर रख दिया। सर्वथा निरहंकार हो जाने पर गुरुजी के मार्गदर्शन से उसे सच्ची शांति का आनंद प्राप्त हुआ। विद्वता के अभिमान से भरे ऐसे बड़े-बड़े अहंकारियों के अहम् को दूर कर देने में पूर्ण समर्थ, ऐसे थे श्री गुरु नानकदेव जी।

अपने इस प्रवास में गुरुजी ने स्थान-स्थान पर सत्संग तथा उपदेशामृत द्वारा लोगों को सन्मार्ग दिखाया। यह यात्रा सन् 1517 ई. में सम्पन्न हुई। इस बीच आपने हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा तिब्बत आदि अनेक दुर्गम क्षेत्र माप डाले।

आप ब्रदी नारायण से हेमकुण्ट व सप्त श्रृंग पहाड़ पर भी गये। वहां लोकनाथ नाम का एक तीर्थ स्थान था, जो बद्रीनाथ से बीस मील आगे तथा धरातल से 1767 फुट की ऊंचाई पर बताया जाता है। प्रातः सूर्योदय के समय वहां के सारे पर्वत-शिखर सुनहरी रंग में चमकने लगते हैं। इसलिए इसे हेमकूंट व सुमेरु पर्वत भी कहते है।

गुरुजी की सिद्धों के साथ वार्ता इसी पर्वत के आस-पास हुई, जो श्री गुरुग्रंथ साहिब में राग रामकली के अंतर्गत 'सिद्ध गोष्ठी' में वर्णित है। सिद्ध लोग संसार से विरक्त होकर यहां तपस्यारत थे।

''हमारे हिंदुस्थान का क्या हाल है?'' सिद्धों के इस प्रश्न पर गुरुजी ने कहा था, 'कलियुग छुरी है। राजे कसाई हो गये हैं। धर्म पंख लगाकर न मालूम कहां उड़ गया है। झूठ रूपी अमावस्या की रात्रि में सत्यस्वरूप चन्द्रमा कभी उदय होता ही

नहीं है। मैं उस चन्द्रमा को ढूंढ-ढूंढ कर व्याकुल हो गया हूं। अंधकार में कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। इस अंधकार में सृष्टि अहंकार के कारण दुखी होकर रो रही है। हे नानक इस दुखपूर्ण स्थिति से किस प्रकार छुटकारा हो?'' (माझ की वार)

ऐसे क्षोभकारी परिस्थिति थी उस समय हिन्दुस्थान की। गुरुजी के मन में उसे देखकर टीस सी उठा करती थी। तभी तो वे देश में सर्वत्र घूम कर जनजागरण तथा धर्म प्रसार के कार्य में अनथक रूप से जुट हुए थे।

सन् 1517 में ही चौथी उदासी प्रारम्भ हुई। यह यात्रा पश्चिमी देशों की ओर थी। गुरुजी ऐमनाबाद तथा वजीराबाद होकर रोहतास पर्वत, तत्पश्चात डेरा इस्माईल खां तथा डेरा गाजी खां गये। अनेक मुसलमान फकीरों के साथ ज्ञान चर्चा करते हुए सक्खर (सिन्ध) व कराची होकर बलोचिस्तान पहुंच गये।

इस यात्रा में गुरुजी ने मुसलमान दरवेशों के नीले वस्त्र धारण किऐ हुए थे। हाथ में फकीरों का असा (डंडा) था। अपनी वाणी का संग्रह अपने बाजू के नीचे रखा हुआ था। मुसलमानों की तरह वजू (निमाज पढ़ने से पहले हाथ-पैर धोने का कार्य) के लिए एक कूजा (प्याला) और एक दरी साथ थी। पांव में चमड़े के जूते और चमड़े की सलवार। गले में अस्थिमाला और माथे पर लाल टीका।

बलोचिस्तान से आप अरब देश में मक्का जा पहुंचे। कई दिनों की निरन्तर यात्रा के कारण आप रात को गहरी नींद सो गये। प्रात: जल्दी न जाग सके। मुल्लाओं ने देखा कि गुरुजी के पांव काबा की तरफ है। उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा, ''आप खुदा के घर (काबा) की तरफ पैर करके सो रहे हो?''

गुरुजी ने कहा, ''भाई, फिर हमारे पैर उधर कर दो जिधर खुदा न हो।''

इस यथोक्ति से मुल्लाओं के ज्ञान-चक्षु गये। साखियों में वर्णन आता है कि जब वे गुरुजी के पैर पकड़कर घूमने लगे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि वे जिधर पैर घुमाते हैं, उधर ही काबा भी घूम जाता है। मुल्ला गुरुजी को काजी के पास ले गये और सारी बात बताई

''आप कौन हैं?'' काजी ने प्रश्न किया।

''मनष्यु हूं।'' गुरुजी ने उत्तर दिया, ''मैंने स्वयं को हिन्दू बतलाया तो मारा जाऊंगा। मुसलमान मैं हूं नहीं। मैं तो पांच तत्वों का बना पुतला हूं। मेरा नाम नानक है।''

''आपकी बगल में जो पुस्तक है, वह क्या है?'' काजी ने पूछा।

''यह मेरी खुराक है, खाद्य है।''

''साई जी ! भला किताब भी कभी खायी जाती है?''

''हां, जो लोग वाद-विवाद के रसिया होते हैं, वे किताब के हाड़ भाग को खाते हैं। जो किताब को किसी महान व्यक्ति की कृषि मानकर उसका केवल अध्ययन करते हैं, वे उसके मांस भाग को खाते हैं।'' गुरुजी का उत्तर था।

सतगुरुजी द्वारा प्रतिपादित इस व्याख्या से काजी का आत्मज्ञान जागृत हो गया। गुरुजी क प्रति श्रद्धा पैदा हुई। उसने आप को अपने से भी ऊंचे आसन पर आसीन किया तथा सत्संग लाभ किया।

मक्का और मदीना घूमने के बाद गुरु जी बगदाद (सन 1518 ई.) पहुंचे। फिर तेहरान (ईरान) आदि होकर वापस अफगानिस्तान उतरे। तत्पश्चात पेशावर से आगे बढ़कर हसन अबदाल की पहाड़ी के नीचे डेरा जमाया।

पहाड़ी पर वली कंधारी नाम का एक मुसलमान दरवेश रहता था। ऊपर ही पानी का एक चश्मा था। मरदाना को प्यास लगी थी। गुरुजी ने उसे वली के पास पानी पीने तथा लाने के लिए भेजा। वली ने मरदाना को फटकारना शुरु कर दिया, 'तू मुसलमान होकर एक काफिर का शिष्य हो गया है? तुझे शरम नहीं आती? तेरे गुरुजी में यदि शक्ति है तो स्वयं धरती से पानी क्यों नहीं निकाल लेता? यहां से पानी लाने के लिए क्यों भेजा है?'' उसने मरदाना को प्यासा ही लौटा दिया।

गुरुजी ने मरदाना को वली के पास दो तीन बार भेजा। किन्तु उसने पानी की एक बूंद भी देने से इंकार कर दिया। मरदाना प्यास के मारे अत्यंत व्याकुल था, निढाल हो रहा था। तब गुरुजी ने उसे एक पत्थर हटाने के लिए कहा। पत्थर हटाते ही नीचे से पानी का एक चश्मा फूट पड़ा। वली को जब पता चला कि गुरुजी ने दूसरा स्रोत निकाल लिया है तो वह चिढ़ गया। क्रोधपूर्वक उसने ऊपर से चट्टान का एक भाग नीचे ढकेल दिया। गुरुजी ने उसने अपने हाथ से रोक दिया। यह स्थान 'पंजा साहिब' के नाम से प्रसिद्ध है। अब भी वहां यात्रियों को गुरुजी के पंजे के निशान वाली शिला दिखाई जाती है।

वहां से चलकर मार्ग में अनेक स्थानों पर ज्ञानोपदेश देते हुए गुरुजी ऐमनाबाद पहुंचे। इन्हीं दिनों बाबर ने हिन्दुस्थान पर आक्रमण किया था। गुरुजी तब ऐमनाबाद (सईदपुर) में ही थे, जब बबार ने कत्लेआम कर हुक्म दिया। गुरुजी को भी अन्य साधु-महात्माओं के साथ पकड़ लिया गया। सभी जेल में डाल दिए गए और उन्हें अनाज पीसने का शारीरिक दंड दिया गया।

बाबर अपने अत्याचारों का वर्णन करता हुआ स्वयं अपने जीवन चरित्र 'तुजक-बाबरी' में लिखता है, 'लड़ाई में जो हिन्दू कैदी हाथ लगते थे, उन्हें मेरे तम्बू के सामने किया जाता था। एक दिन तो इनते कत्ल हुए कि खून और लाशों के मारे तीन

बार जगह बदलनी पड़ी।

बाबर की सेना को 'पापो की बारात' कहते हुए गुरुजी ने भाई लालो को सम्बोधित कर कहा, बाबार पाप (अत्याचार) की बारात लेकर काबुल से चढ़ आया है और जबरदस्ती हिन्दुस्थान रूपी कन्या का दान मांगता है। शर्म और धर्म दोनों ही छिप गये है। झूठ प्रधान होकर घूम रहा है। काजियों और ब्राहमणों की बात समाप्त हो गई हैं अब विवाह शैतान पढ़वाता है (अर्थात् लड़कियों को बलात् छीन कर आक्रमणकारी अपनी पत्नी बना लेते हैं) फलत: मुसलमानियां और हिन्दुस्तानियां दोनों ही रोती है। खून के गीत गाए जा रहे हैं। रक्त का केशर स्थान-स्थान पर बिखरा पड़ा है।'' (राग तिलंग)

गुरुजी ने बाबर के अत्याचारों को स्वयं अपनी आंखों से देखा था। स्त्रियों तक कर दुर्दशा बाबर ने की। उसे देखते हुए गुरुजी का हृदय चीत्कार कर उठा। वे यह कहे बिना न रह सके-

''जिन स्त्रियों की सुन्दर केश-राशि थी, जिनकी मांगे सिन्दरू से अनुरंजित रहा करती थीं, उनके सिर के वे ही बाल कैंचियों से तर दिए गए है। धूल उड़-उड़ कर उनक गले तक आ रही है। जो सुन्दरियों महलों के भीतर निवास करती थीं, उन्हीं को आज साधारण स्थानों में बैठने को भी जगह नहीं मिल रही। जो रमणियां सेजों पर आनन्द लेती थीं, उन्हीं के गले में रस्सियां पड़ी हुई हैं। यदि पहले से चेते होते तो क्यों यह सजा मिलती? राजाओं ने रंग और तमाशों में अपना कर्तव्य भुला दिया। डटकर बाबर का न तो मुकाबला किया, न ही प्रजा की रक्षा की। अब बाबर की ही आज्ञा चल रही है। फलस्वरूप राजकुमारों को भी रोटियां खाने को नहीं मिल रहीं।'' (राग आसा, अष्टपदी)

गुरुजी ने इस भीषण अत्याचारों को देखकर परमात्मा से प्रश्न किया-

''बाबर ने खुरासान पर शासन किया। किन्तु उसे अपना समझकर, हे प्रभु! तूने बचा रखा। उसने हिन्दुस्थान को अपने आक्रमण से भयभीत किया है। हे परमात्मा, तूने अपने ऊपर दोष न रखकर मुगलों को यम रूप बनाकर आक्रमण करवाया। इतनी मार-काट हुई कि लोग चिल्ला उठे है। हे परमात्मा ! तुम में तनिक भी करुणा उत्पन्न नहीं हुई? हे कर्ता, तू तो सभी का है। केवल मुगलों का ही नहीं, हिन्दुओं का भी है। यदि कोई शक्तिशाली किसी शक्तिशाली का हनन करता है, तब तो क्रोध नहीं होता। किन्तु, यदि शक्तिशाली सिंह निरपराध पशुओं के झुड पर आक्रमण कर उन्हें मारता है, तो स्वामी को कुछ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिये। इन कुत्तों ने हीरे सदृश हिन्दुस्थान को बिगाड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जब यह शासक मरेंगे तो कोई इनका नाम भी न लेगा।'' (राग आसा)

वह रक्तपात का युग था। हिन्दुओं की गर्दनों पर सदा तलवार लटकती रहती थी। आतंक का साम्राज्य था। कोई ऐसा नेता न था जो राष्ट्र की सभी बिखरी शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर अत्याचार का सामना कर सके। अत: गुरुजी धार्मिक आधार पर जन-जागृति तथा जन-चेतना का संचार करते हुए भ्रमण कर रहे थे। मुस्लिम धर्मांधता इस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि एक बंगाली ब्राह्मण बुद्धन को केवल इसलिए मौत के घाट उतार दिया गया था क्योंकि उसने हिन्दू धर्म को इस्लाम के बराबर बताया था। तत्कालीन मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन के लिए कई अस्त्र तैयार कर रखे थे यथा-यात्रा कर, तीर्थ कर, हिन्दू वेश तथा हिन्दू आचरण का सार्वजनिक रूप से अपमान, हिन्दू मेलों, उत्सवों और जुलूसों पर प्रतिब, नये मंदिरों के निर्माण और जीर्ण-शीर्ण मंदिरों के पुनरुद्धार पर रोक, हिन्दुओं के धर्मनेताओं का दमन तथा मुसलमान होने पर धन और सरकारी नौकरियों के रूप में पुरस्कार वितरण आदि। मुस्लिम धर्मान्धता की इस भयंकर आंधी के बीच में गुरुजी को बड़ी दक्षतापूर्वक कार्य करना था, ओर यह उन्होंने सफलतापूर्वक कर दिखाया।

बाबर ने जब गुरुजी की ख्याति सुनी तो वह आप की सेवा में उपस्थित हुआ। कहने लगा-''पीर साहब! आपकी क्या इच्छा है? मुझे बताईये, मैं आपकी हर मनवांछित वस्तु उपलब्ध करा सकता हूं। मैं अमीर बाबर हूं।''

''कहे नानक, सुन बाबर मीर!
तुझ ते मांगे सु अहमक फकीर।

-तुम से मांगने वाला मूर्ख ही होगा।'' गुरुजी की निर्भीकतापूर्वक उसे दो टूक जवाब दिया। जिसने भारत भूमि को खून से रंग डाला था, उससे कोई भेंट स्वीकार करना उन्हें कैसे मान्य हो सकता था? फिर जिस सच्चे पातशाह के चरणों में समस्त सांसारिक ऐश्वर्य पहले ही बिखरे पड़े हों, उसे वह धर्मांध मूर्ख दे भी क्या सकता था?

गुरुजी ने अपनी आयु के लगभग पच्चीस वर्ष देश-विदेश में धर्म प्रचार करते हुए व्यतीत किए। स्वदेश ही नहीं दूसरे देशों तिब्बत, अरब, ईरान और रोम तक यात्रा की और भारतीय संस्कृति की सर्वदूर छाप बिठायी। आपके प्रवास के रूप में यह भारतीय संस्कृति की ही दिग्विजय यात्रा थी। आपने संसार के तत्कालीन अनेक सम्प्रदायों के विद्वानों व पीरों को प्रभावित किया। जिन अरबों, तूरानियों और ईरानियों ने तलवार के जोर से हमारे देश में अपने मजहब का प्रसार किया था, उन्हीं के मातृ देशों में निहत्थे-केवल राग (शेष पृष्ठ 14 पर)

महारानी जिंदा का संघर्ष

- स. रविन्द्र सिंह गिल

संसार में यौद्धा वे ही नही रहते, जो युद्धभूमि में शस्त्र उठाकार जूझतें है तथा वीरगति को प्राप्त होते हैं बल्कि वे भी यौद्धा ही कहलायेंगे जो कर्मभूमि में जीवन मुल्यों की रक्षा के लिए सतत् संघर्षरत रहते हैं। महारानी जिंदा एक ऐसी ही यौद्धा थी। शेर-ए-पंजाब महाराजा रंजीत सिंह की महारानी और महाराजा दलीप सिंह की माता महारानी जिंदा का जन्म सन् 1817 में ग्राम चाड़, तहसील जफरवाल, जिला सियालकोट (वर्तमान पाकिस्तान) में स. मन्ना सिंह औलख के घर में हुआ था। वह बचपन से ही बहुत इरादे की पक्की तथा बहादुर महिला थी।

अंग्रेज व सिखों के पहले युद्ध के बाद 15 दिसम्बर, 1845 ईस्वी को लाहौर में दोनों पक्षों के मध्य हुई संधि की शर्तों को तय करते समय जब वार्ता हो रही थी तब दीनानाथ दीवान ने यह राय दी थी कि संधि करने से पहले महारानी जिंदा की भी राय पूछ ली जावे, तो अंग्रेज जनरल फेंडरिक क्वेरी ने कहा था कि ''गर्वनर जर्नल महारानी की नही बल्कि सरदारों व सिख राज के स्तम्भों की राय पूछती हूं।'' दीवान साहब ने कहा कि सरदार तो अपनी सरदारियां पहले ही छोड़ने को तैयार बैंठे हैं और सिखराज सारे स्तम्भ गिर गये हैं। पंजाब के आवाम् की एकमात्र उम्मीद महारानी जिंदा पर है इसलिए उसे अनदेखा नही करना चाहिए लेकिन अंग्रेज जर्नल ने यह बात नहीं मानी। यदि ऐसा कहें कि जानबूझकर गद्दार तेजसिंह को मंत्री का पद दिया। जब तेजसिंह ने महाराज दलजीत सिंह को दरबार में टीका लगाने के लिए कहा तो महाराजा दिलीप सिंह ने उसके हाथ से टीका लगवाने को मना कर दिया। बालक दिलीप सिंह के रूख के कारण महारानी जिंदा की जान पर आ बनी। महारानी जिंदा व दिलीप सिंह को शाही किले सुम्मन बुर्ज में 7 अगस्त, 1849 को नजरबंद कर दिया गया तथा उसे कैद में बहुत तंग किया गया व अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये। यहां तक कि उसे पानी के लिए भी तरसाया गया। दोस्त मौहम्मद जो उस समय अफगानिस्तान का नबाव था, उसने भी अंग्रेजों को लिखा कि वें महारानी जिंदा के साथ अन्याय न करें। लेकिन वह शेरदिल अपने हक के लिए व अपने बेटे व सिखराज के लिए अंग्रेजों से लड़ती रही। उसने तत्कालीन हाईकोर्ट कलकत्ता में भी लड़ाई लड़ी व जनता के बीच में लड़ाई हुई। उसकी इस सतत् संघर्ष के कारण अंग्रेज सरकार ने उसे बनारस जेल में, फिर नेपाल में तथा नासिक की जेल में भी बंदी बनाकर रखा। महारानी जिंदा की लड़ाई कोई धन-दौलत के लिए नही थी क्योंकि वह तो अंग्रेज हमेशा ही देने को तैयार थे। उसकी लड़ाई अपने बच्चे के धर्म को बचाकर रखने की, अंग्रेजों द्वारा धोखे से छीने हुए पंजाब को वापिस लेने के लिए थी। महाराजा दिलीप सिंह को मां से अलग किया गया व उसकों गलत शिक्षा देने के लिए लेडी लोगन को लगाया गया। ताकि उसे ईसाई संस्कारों से जोड़कर सिख पंथ से व धर्म से उसे अलग कर दिया जावे। माता जिंदा के संघर्ष व तपस्या का ही परिणाम था कि जब वह अपने बच्चे को मिली तो उसने महाराजा दिलीप सिंह को यही कहा कि बेटा तेरा धर्म सिख धर्म है इसलिए तुझे अमृत छखकर सिंघ सजना चाहिए। अंग्रेजों ने तेरे साथ धोखा किया है तथा भरोबाल के मुहायदें पर जिन्होंने दस्तखत करायें हैं वह तेरे सरपरस्त थे तथा तुझे तख्त से नहीं उतार सकते थें। माता की सीख का यह प्रभाव हुआ कि एक लम्बे समय तक ईसाईयत मत व अंग्रेजों के भौतिक प्रलोभनों के बीच में रहने वाला युवक पुनः 25 मई, 1886 को अमृत छखकर सिंघ सजा। माता के संस्कारों व अमृत के पाहुल के कारण महाराजा रंजीत सिंह में ईतनी दृढ़ता आ गई कि उन्होंने अपने सहपाठी बाल सखा कर्नल वायलों को लिखा कि शायद एक दिन, वो दिन भी आयेगा जब मैं और तू मैदानें जंग में एक-दूसरे के सामने होंगे। क्योंकि मैं एक फौज तैयार कर पंजाब पहुंचने की कोशिश करूंगा। लेडी लोगन जिसे महाराजा दिलीप सिंह के ब्रेन वाश के लिए लगाया गया था। उसने भी महारानी जिंदा के संस्कारों व उसकी दृढ़ता को देखते हुए, लिखा कि मेरे सामने यह औरत, जो कभी सिख-राज की आत्मा गिनी जाती थी। उसके हुस्न समझदारी, राजनीतिक सुझ-बूझ व आत्मिक बल की कहानियां जगत प्रसिद्ध हो गई। जब महाराजा दिलीप सिंह ने पंजाब जाने की ईच्छा जाहिर की तो लेडी लोगन ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की, कि वह पंजाब न जावें लेकिन दिलीप सिंह के मन में अपनी मां और धरती मां की पुकार नित्य उसके हृदय को उद्वेलित करती थी व झकझोरती थी। उसने लेडी लोगन को लिखा कि ऐ लेडी उस दिलीप सिंह को भूल जा जिसको तू कभी जानी थी, वह दिलीप सिंह तो कबका मर चुका है। उसकी जगह अब तो महारानी जिंदा का सपूत दिलीप सिंह जिंदा हो गया। उसने यह भी कहा कि मेरे मैदाने जंग में मेरा कोई रिश्तेदार भी सामने आयेगा तो उसे भी मैं वैसे ही मारूंगा जैसा अंग्रेजों को। मैं चंद सोने के मौहरों के लिए अपना स्वाभिमान नहीं बेच सकता। सुम्मन बुर्ज से महारानी जिंदा ने

अंग्रेज हैंनरी लारीन्स को जो पत्र लिखा उससे उसके हृदय की पीड़ा स्पष्ट झलकती है। उसने कहा कि आप रहस्मयी तरीके से क्यों व्यवहार करतें हैं जो भी है स्पष्ट होकर सामने आओं। एक तरफ दोस्ती का दंभ भरते हो, दूसरी तरफ मुझें कैद किये हुए हों। अदालत लगाओं नहीं तो मैं लंदन जाकर फरीयाद करूंगी, अगर आपका ईख्लाक इतना ही गिर गया है तो तीन-चार नमक हरामों को अपने पास रख लो तथा बाकी सारे पंजाब को फांसी पर चढ़ा दो, इन नमक हरामों के कहने में आकर, उसने यह भी लिखा है कि मेरी अंग्रेजों के प्रति गहरी घृणा का ही परिणाम है कि मैं और मेरा अवयस्क बेटा दिलीप सिंह दोनों ही सजा भुगत रहे हैं। महारानी के हृदय की पीड़ा को देखते हुए व उसके व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण उन्होंने 20 अगस्त, 1847 को महारानी को शेखूपुरा के किले में कैद कर दिया। बाद में महारानी का जनसमर्थन देखते हुए उसे देश निकाला देकर चुनार के किले में बंद किया गया। लारेन्स ने लिखा था कि हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि महारानी ही इस मूल्क में हमारी नीति की दुश्मन है। चुनार के किले से भिखारन के वेश में फरार होकर महारानी जिंदा नेपाल चली गई और वहां से अनेक संघर्ष व विपरीत परिस्थितियों से लड़ती हुई इंग्लैण्ड अपने बेटे के पास चली गई। जहां 46 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु अगस्त 1963 में हो गई। उसने अपने बेटे को यह कहा था कि मेरी अस्थियां इस निर्दयी देश में मत डालना, हिन्दुस्तान ले जाना। महारानी जिंदा के संस्कार भारत लाकर नासिक में किया गया। महाराजा दिलीप सिंह की साहिबजादी बंबा ने नासिक से महारानी जिंदा की राख को लाकर 27 मार्च, 1924 को महाराजा रंजीत सिंह की समाधि के पास इसकी स्थापना की।●

(पृष्ठ 9 का शेष)

श्री गुरु रामदास जी कहते हैं कि ईश्वर भक्त केवल अपने वंश की इक्कीस पीढ़ियों को ही नहीं वरन् समस्त संसार का उद्धार करता है। यही विचार 71 वे नारद भक्तिसूत्र में आया है। नीच जाति में जन्म लेकर भी मनुष्य ईश्वर भक्ति करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस बात का प्रतिपादन करते हुए श्री गुरु रामदास जी प्रश्न करते हैं क्या दासी पुत्र विदुर के घर भगवान श्री कृष्ण नहीं गये थे।

श्री अर्जुन जी की गुरुपद पर नियुक्ति-श्री गुरु रामदास जी के पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र पृथीया अथवा पृथ्वीचन्द बड़ा ही दुष्ट, धन का लालची और कुचक्र चलाने वाला चालबाज था। सबसे छोटा पुत्र अर्जुन अथवा अर्जुनमल अत्यन्त विनम्र स्वभाव का था। उसकी ईश्वर भक्ति, काव्य प्रतिमा, आदि गुणों के कारण वह अपने पिताजी को अत्यन्त प्रिय था। इस समय तक गुरुपद सोढ़ी घराने में ही रहेगा यह निश्चित हो चुका था। श्री गुरु रामदास जी ने श्री गुरु अर्जुनदेव जी को ही गुरुपद पर प्रतिष्ठित करने का विचार प्रकट किया। एक किंवदन्ती के अनुसार श्री अमरदास जी ने श्री अर्जुनदेव जी के विषय में भविष्यवाणी की थी कि ''यह मेरा सबसे छोटा पोता आगे चलकर गुरु होगा और लोगों को तारने वाली नाव बनेगा।'' पिताजी ने श्री गुरु अर्जुनदेव जी को गुरुपद सौंपने का विचार किया है यह मालूम होते है पृथिया क्रोध से आग बबूला हो उठा और क्रोध में अंधा होकर उसने अपने पिता को अपशब्द तक कह डाले। पृथिया के दुर्व्यवहार से श्री गुरु रामदास जी को और भानीजी को अत्यन्त मानसिक क्लेश पहुंचे। श्री गुरु रामदास जी ने पृथिया से कहा, ''तू मिना (हंसमुख डकैत) है।'' यह कहकर आपने उसे घर से निकाल दिया था। पृथिया के अनुयायियों को ''मिनर सिख'' कहा करते थे।

स्वर्गवास-47 वर्ष में ही श्री गुरु रामदास जी ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी। श्री गुरुरामदास जी केवल सात वर्ष तक ही गुरु पद पर प्रतिष्ठित रहे। आपका आयु का बड़ा काल श्री गुरु अमरदास जी के मार्गदर्शन में पंथ सर्वांगीण विकास हेतु बड़े बड़े कार्य करने में व्यतीत हुआ था। आपके गुरुपद पर रहते हुए कोई भी महत्वपूर्ण घटना नहीं घटी थी। श्री गुरु अमरदास जी ने साकार किया हुआ सिख संगठन का उत्तरदायित्व उन्होंने पांचवे गुरु श्री अर्जुनदेवजी को सौंप दिया।●

(पृष्ठ 12 का शेष)

और रबाब के सहारे, बड़े-बड़े दिग्गजों को अकेले ही जाकर आपने परास्त किया। आपकी बाणी भक्ति-रस का छलछलात हुआ समुद्र थी, जिसमें असस्तय और पाखंड को बहा ले जाने का प्रबल सामर्थ्य था।

डॉ. रोशन लाल आहूजा के शब्दों में, 'वे एक फकीर के समान आये और एक फरिश्ते के समान अदृष्ट हो गये। एक प्रकाश के वणजारे के, समान वे आये और अपने पीछे सर्वत्र ज्योति की किरणें बिखेर गये। एक जादूगर के समान उन्होंने 'खुल जा सिम सिम' के राम नाम मंत्र से सब प्राणियों के हृदय कपाट खोल डाले, जो पुनः कभी बंद नहीं होंगे।''

आपकी पवित्र वाणी युग-युगों तक संसार में गूंजती रहेगी-

''अणमंगिआ दानु दीजै दाते तेरी भगति भरे भंडारा।
राम नाम बिनु मुकति न होई, नानकु कहे वीचारा।।''(रा.आ)

हे प्रभु बिना मांगे ही तू दान देता है। तेरी भक्ति ही भंडार भर देती है अर्थात् व्यक्ति को किसी चीज की कमी नहीं रहती। नानक यह बात बहुत विचार करके कहते हैं कि बिना राम नाम के मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। ●

सिंध सिरमौर योद्धा दाहिर सेन - ओंकार सिंह लखावत

भारत की आर्थिक व बौद्धिक समृद्धि को देखकर अनेक विद्वान और आक्रांता भारत की ओर आकर्षित होते रहे हैं तथा छल-कपट व अत्यधिक क्रूरता के आधार पर हमारी अस्मिता व संस्कृति को नष्ट करने के कुप्रयास तथा यहां की अटुट भौतिक संपदा को लूटने के लिए अनेक आक्रमण भारत में हुए। इन लुटेरों से सिंध प्रदेश भूमि से सीधा जुड़े होने के कारण आक्रांताओं को अनेक बार सिंध प्रदेश में न केवल कड़ी टक्कर दी है बल्कि भारत की सुरक्षा के लिए एक मजबूत दीवार का काम भी किया है। विश्व विजयी कहलाने वाले सिकन्दर महान को भी सिंध के योद्धाओं ने कड़ी टक्कर दी थी, उसके 40 हजार सैनिक सिंध-मकरान के रेगिस्तान में भटक गये और पानी के अभाव में प्राण गवां बैठे। सिंध में कमिश्नर रहे एच.टी. लैम्ब्रिक ने ''दि सिंध बिफोर मुस्लिम कॉनक्वेस्ट'' में सिंध वासियों की सैनिक क्षमता एवं मनोबल का उल्लेख करते हुए लिखा कि :-

''There was a subtle power in Sindh which created the will to resist the foreigner''

प्रसिद्ध पत्रकार एवं सांसद स्व. के. आर. मलकानी ने अपनी पुस्तक 'दि सिंध स्टोरी' में ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर यह लिखा है कि अलेक्जेण्डर ने अपने कई मित्रों से यह स्वीकारोक्ति की, कि उन्होंने यानि हिन्दुस्तानियों ने मुझ पर हर जगह हमला किया, उन्होंने मेरे कंधों पर जख्म पहुंचाये, मेरी टांगों पर चोट मारी, मेरी छाती में तीरों से घाव किये और मेरी गर्दन पर गदा से भयंकर वार किये।'' इतनी विशाल सेना के रहते यदि हमारे योद्धा सिकन्दर के शरीर पर ऐसा आक्रमण कर सके, तो उनके युद्ध कौशल और साहस दोनों की दाद देनी पड़ेगी। मौहम्मद वसूम द्वारा अपनी पुस्तक ''तारिखु-स हिन्द'' में उल्लेख किया है कि- ''खलीफा ने अपने दलाल को हिन्दुस्तानी महिला दासियों एवं अन्य वस्तुओं को खरीदने हेतु सिंध भेजा एवं जब वह वापिस लौट रहे थे तो देबल (ठठ्ठा) बंदरगाह पर उन्हें घात लगाकर लूट लिया।'' यानि अपनी मातृशक्ति को अपने प्राणों की परवाह न करते हुए आक्रांताओं के चंगुल से छुड़ाया।

इसी सिंध में सिंध के महानायक दाहिर सेन का शासनकाल, उसके जीवन की प्राथमिकताएं तथा उसकी संघर्ष की प्रवृति समस्त भारतीयों के लिए स्वयं को गौरान्वित महसूस करने वाली है। महाराजा दाहिर सेन का जन्म सिंध देश के अलौर शहर में हुआ। छोटी आयु में ही उन्होंने राजा चच की मृत्यु के पश्चात् सिंध के सिंहासन को संभाला, अरबों ने दाहिर सेन को नन्हा बालक समझकर सिंध पर बार-बार आक्रमण किया लेकिन हर बार उन्हें हार का सामना करना पड़ा। दाहिर सेन महान तीरंदाज थे तथा उनकी कमान इतनी भारी थी कि उनके अलावा उस कमान को कोई और मोड़कर तीर चिल्ले पर चढ़ाकर, तीर चला नहीं सकता था। दाहिर सेन के पास एक हथियार था जिसे उन्हीं के नाम से 'दाहरचक्र' के नाम से जाना जाता था। यह हथियार बहुत वजनदार गेंद की तरह था जिसके चारों और नूकीले त्रिशूल लगे हुए थे। वह हथियार आज के बच्चों की गेंद को दूर उछालने व वापिस लौटने के लिए लगी ईलास्टिक डोरी की तरह उस समय वैज्ञानिक रूप से निर्मित मजबुत डोरी से बंधा होने के कारण दुश्मन को घायल करने के बाद वापिस दाहिर सेन के पास ही लौट आता था। अरबों ने यह फैसला किया कि वह किसी भी प्रकार सिंध को जीतेंगे, जिससे उन्हें सिंध की संपदा आदि के साथ-साथ भारत के शेष भाग पर आक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त हो सके। सिंध की शासन व्यवस्था प्रारंभ में दाहिर सेन के भाई चंद्र ने संभाली, जो कि बौद्ध मत को मानते हुए इस कारण उनके काल में बौद्ध धर्म काफी फला-फूला। सन् 711 में अरब के मौहम्मद बिन कासिम ने जब सिंध पर हमला किया तो उन्होंने कूटनीति के तहत बौद्धों को अवैधान का आश्वासन देकर उन्हें अपने पक्ष में तोड़ लिया। मौहम्मद बिन कासिम के द्वारा देबल पर प्रशस्त कब्जा लेने के बाद महाराजा दाहर सेन मैदान में जा डटे लेकिन वहां बौद्ध अनुयायियों ने मौहम्मद बिन कासिम की सेना को मार दिखाने और रक्षात्मक सूचना देने का कार्य किया। ब्राम्हाणावाद के क्षेत्र में मौहम्मद बिन कासिम और राजसेन की सेनाओं की बीच भीषण युद्ध हुआ। यहां पुन: महाराज दाहर सेन के साथ विश्वासघात हुआ। उनकी सेना में जो अरबी मुसलमान सैनिक भर्ती थे वे पलायन कर गये लेकिन हाथी पर सवार होकर महाराज दाहर सेन ने पराक्रम के साथ युद्ध किया और शत्रु सेना को भारी नुकसान पहुंचाया। मौहम्मद बिन कासिम ने राजा दाहर की सेना के साथ आमने-सामने युद्ध न कर सकने की क्षमता न होने से छल-कपट, लुक्का-छिप्पी से युद्ध किया तथा स्वयं भी अपना वेश बदलकर युद्ध में शामिल होता था। मौहम्मद बिन कासिम व जॉन की सेना ने पहला हमला मकरान से प्रवेश कर 'कन्नाजउर' पर किया जहां भीषण युद्ध में भारी जन-धन की हानि हुई। वहां से वह कासिम देबल की ओर बढ़ा, जहां उसने अग्नि गोलों से दुर्ग पर

हमला किया। तीन दिन और तीन रात अरबी सेना व सिंध की सेना में युद्ध हुआ। अनेकों सैनिक शहादत को प्राप्त हुए। मौहम्मद बिन कासिम ने वहां स्थित मंदिरों की मूर्तियों को खण्डित कर दिया और मंदिरों को मस्जिद में परिवर्तित कर दिया तथा बंदी बनाये गये हिंदू और बौद्धों को बलात इस्लाम ग्रहण कराया गया। महाराज दाहर सेन हिम्मत नहीं हारे और निरंतर मौहम्मद बिन कासिम को ललकारते रहे। मौहम्मद बिन कासिम व महाराजा दाहर सेन की सेना के बीच नारून, सिवस्तान, बुधिया दुर्ग, बज्झर, सीरशाम, कुम्भ नदी के तट पर स्थित नील्हनगर, बिसय, बैत दुर्ग, बधवा व सिंध का मध्य भाग, रावर, बहरूर दहलीला, ब्राह्मणावाद में भयंकर युद्ध हुये। जब कासिम महाराजा दाहर सेन को सीधे परास्त या शहीद करने में असफल रहे तो उन्होंने कुटिलता व छल-कपट से काम लिया। जो स्त्रियां बंदी बनाई गई थी, उन्हें डराकर साथ लेकर व उनके साथ अपने सैनिकों को महिलाओं के कपड़े पहनाकर युद्ध भूमि से अलग एक दिशा से पुकार करवाई कि अरब लोग उनकी इज्जत लूट रहे है, उनकों बंदी बनाकर उनके सतित्व को भंग किया जा रहा है, बचाओं-बचाओं। वस्तुत: अपने सैनिकों से कुछ सीमा तक उन बंदी महिलाओं के साथ ऐसा करवाया भी ताकि वे आंतकित होकर उनकी योजना के अनुसार चीख-पुकार कर सकें। इस करूण पुकार को सुनकर महाराजा दाहर सेन युद्ध भूमि से अकेले ही उस दिशा की ओर बढ़े, जहां से करूण पुकार की आवाज आ रही थी। दाहर सेन को अकेला देख नारी वेशधारी कासिम के सैनिक दाहर सेन पर टूट पड़े। दाहर सेन हाथी पर सवार थे, उन पर अग्निवाण दागे गये। उन्होंने काफी समय तक कुशलतापूर्वक बचाव किया लेकिन सेना के सामने अकेला व्यक्ति कहां तक जूझ सकता था। अग्निवाणों से हाथी के हौदें को आग लग गई जिससे हौंदा धू-धू कर जलने लगा। महाराज दाहर ने महावत को निर्देश दिया कि वे हाथी पीछे की ओर ले ले, परन्तु हौदे में आग लग जाने के कारण उसके शरीर में जलन होने व प्यास के कारण हाथी पानी में जा घुसा । अनेक प्रयासों के बावजूद भी हाथी पानी से बाहर नहीं निकला, दाहर और उसके कुछ सैनिक नदी के प्रवाह के बेग का मुकाबला करते रहे। अरब सैना के हमले को देखकर दाहर सेन के कुछ अविश्वसनीय सैनिक जो नदी के किनारे खड़े थे, भाग खड़े हुए भंवर में फसे महाराज दाहर सेन पर अरबी सेना ने वाणों से बौछार कर दी, इतने में एक तीर दाहर सेन के सीने में आ लगा। अरबी सेना ने मौका देख दाहर सेन के सिर व गर्दन पर वार कर उन्हें घायल कर दिया और इस प्रकार अंतत: सिंध का महानायक स्त्री रक्षा के प्रण को निभाने के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर गया। उनके शव को ब्राह्मण किनारे पर निकाल के लाए और उनका दाह-संस्कार किया। यहां यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि पति की मृत्यु के बाद भी साहस न हारकर उनकी पत्नि रानी लाडीबाई ने युद्ध की कमान संभाली, वह हिन्दु सैनिकों के साथ युद्धभूमि में कूद पड़ी तथा उसमें शत्रु सैनिकों का भारी संख्या में संहार किया। जब शत्रु भारी पड़ने लगा तो रानी लाडीबाई ने विदेशी आक्रांताओं से अपने सतीत्व एवं पवित्रता की रक्षा के लिए अन्य सिंधी ललनाओं के साथ हंसते-हंसते जौहर की ज्वाला में आत्माहुति दे दी। यह भारत के इतिहास में सतीत्व की रक्षा के लिए मातृशक्ति द्वारा सामूहिक रूप से किये गये जौहर की प्रथम घटना थी। यहीं संघर्ष खत्म नहीं हुआ। दाहर सेन की वीर पुत्रियां सूर्यकुमारी और परमाल भी युद्ध मैदान में कूद पड़ी। दोनों ने अपनी सैन्य कौशल का प्रदर्शन किया लेकिन अंततोगत्वा मौहम्मद बिन कासिम ने उन्हें बंदी बना लिया। उन्हें कासिम से मुक्त कराने के लिए सिंध की आम जनता ने एकत्रित होकर अरब सैनिकों से संघर्ष किया और नारी जाति की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर किये।

वे बहुत ही न्यायप्रिय तथा उनके राज्य का अधिकांश भाग मरूस्थली होने के बावजूद भी लोकार्षण झीलों, सिंचाई हेतु निर्मित नहरों के कारण भूमि का उपजाऊ क्षेत्र हरियाली युक्त था। उन्होंने अपनी जनता के हित के लिए अनेक अच्छे कार्य व निर्माण किये तथा मातृशक्ति व गोवंश की रक्षा को अपनी प्राथमिकता समझा। अरबों द्वारा आक्रमण करने के कारण उन्हें युद्ध में कूदना पड़ा क्योंकि वह अच्छी तरह जानते थे कि अरब इस देश की नारियों को लूटकर अपने साथ दासी बनाकर ले जायेंगे, गौवंश की हत्या करेंगे व उन्हें भी लूटकर साथ ले जायेंगे तथा मंदिरों को तोड़कर मस्जिदों में परिवर्तित कर देंगे इसलिए एक स्वाभिमानी, राष्ट्रभक्त राजा ने विदेशी आक्रांताओं का मुकाबला दृढ़ता से करने का निर्णय लिया। सिंध संसार का सिरमौर रहा है तथा सिंध का महानायक महाराजा दाहर सेन था, जिसे कोटि-कोटि प्रणाम !

(लेखक महाराजा दाहर सेन, सिंध के इतिहास, हिंगलास देवी आदि अनेक खोजपूर्ण पुस्तकों के लेखक तथा पूर्व सांसद हैं तथा वर्तमान में राजस्थान प्राचीन धरोहर अभियुत्थान बोर्ड के अध्यक्ष हैं जिनके द्वारा अपने पूर्व कार्यकाल में सिख इतिहास के पवित्र स्थान 'साहबा-साहिब' में इसी संस्थान के द्वारा राज्य निधि से पवित्र सरोवर का निर्माण कराया तथा इस कार्य में उस जिले के पूर्ण प्रशासन व स्थानीय जनता को प्रेरणा देकर उन्हें सरोवर की 'कारसेवा' से जोड़ा। -: संपादक)

मिंटगुमरी के शहीद

– अविनाश जायसवाल

बहनों का साहस

रामदत्त, मिंटगुमरी के जिला प्रचारक थे। उन्होंने पेशावर आदि सीमा प्रान्त के स्थानों से हथियार मांगने की योजना बनायी। वहां हथियार प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे।

डॉ. देवप्रकाश, पेशावर के उत्साही व समर्पित कार्यकर्ता थे। उन्हीं के मार्फत ये हथियार उपलब्ध होते थे। एक बार मिंटगुमरी से पेशावर किसी को भेजने की बात चली। राजकुमार संघ का निष्ठावान कार्यकर्ता था। वह सामने आया। उसने मुसलमानी रीति रिवाज का अच्छा ज्ञान था तथा उर्दू भाषा का भी। समस्या यह थी कि यहां से तो पेशावार जाया जा सकेगा परन्तु वहां से इतने हथियार को लेकर कैसे आया जा सकेगा। पुलिस और गुप्तचर विभाग की ही नहीं मुस्लिम नेशनल गार्ड के जवानों की भी खोजी नजरें चारों ओर रहती थीं। उन दिनों कर्मचारियों के तबादले हो रहे थे। योजना यह बनी कि तबादले का बहाना बनाकर सामान लाया जाये। पर उसके लिए परिवार को भी तो साथ होना चाहिए, नहीं तो शक होना स्वाभाविक था। राजकुमार ने अपनी बहन को तैयार किया और वे दोनों चल पड़े पेशावर की ओर। वहां पहुंच गए देवप्रकाश के पास। परन्तु तब सामान उपलब्ध नहीं था। इसलिए इन्हें कुछ दिन रुकना पड़ा। समय पर वापस न आ सकने के कारण मोंटगुमरी में जिला प्रचारक रामदत्त व अन्यों को स्वाभाविक चिंता हुई। उन्होंने मिंटगुमरी नगर प्रचारक देवदत्त (विटठल देवधरे) को भेजा। वे भी कई प्रकार के खतरों में से गुजरते हुए पेशावर पहुंच गए। वहां यह जानकर वे निश्चित हुए कि हथियार न मिल पाने के कारण राजकुमार को अपना वापसी कार्यक्रम आगे के लिए बढ़ाना पड़ा था। जब हथियार मिल गए तो उन्हें व्यवस्थित बांधा गया। बंदूके बिस्तर के अंदर लपेटी गई। टिफिन के डिब्बों में गोलियों के कारतूस रखे गये। इसी प्रकार अन्य हथियारों को भी बांधा गया। समान ले जानते हेतु ट्रक किया गया। देवप्रकाश शास्त्री का वहां अच्छा परिचय व प्रभाव था। उन्होंने नाके पर अपने परिचित लोगों को भेज दिया गया। जिससे वहां कोई रुकावट न पड़े। शक न हो इसलिए ट्रक के अगले भाग में दो पलंग रखे गए थे, ताकि हर देखने वाले को यह लगे कि कोई परिवार तबादले पर जा रहा है।

इस प्रकार ट्रक सकुशल मिंटगुमरी पहुंच गया। एक बार लाजपतराय व उनकी पत्नी ने यह काम किया। यह कोई एक राजकुमार या लाजपतराय के परिवार के साहस की घटना नहीं है, अनेक बार न केवल मिंटगुमरी में वरन् हर स्थान पर ऐसे ही साहस व सूझबूझ का प्रदर्शन कर हथियार लाए गये।

कैसा था रोमांचकारी वह अभियान

हथियार केवल बाहर से ही नहीं मंगाये जाते थे बल्कि हथगोले आदि अपने-अपने स्थानों पर बनाये जाते थे व उनका परीक्षण भी होता था। यह काम भी बड़े खतरे का था। बहुत सावधानियां बरती जाती थीं क्योंकि यह सब पुलिस व गुप्तचरों के जाल व उनकी आंखों से बचकर करना होता था। इस कार्य में भी बाल स्वयंसेवक बड़े उपयोगी होत थे। जहां बम बन रहे होते थे उन्हें उस स्थान के निकट तैनात किया जाता था। यदि कोई पुलिस वगैरह आयी तो वे पहले से ही खतरे का सूचक कोई संघगीत और 'देशवासियों जागो दुश्मन आ रहा है' गाने लगते थे या अन्य कोई खतरे का संकेत तय कर लेते थे। यदि खतरा टल जाता तो वे गाने लगते 'काम करो भाई काम करो, अपने संग है राम' आदि।

यदि खतरे का संकेत बाल-स्वयंसेवकों की आरे से मिलता तो कमरे में बम बना रहे कार्यकर्ता, अपना काम बंद कर, सब समान समेटकर वहां रामायण पाठ या अन्य धार्मिक कार्यक्रम शुरु कर देते।

ऐसे खतरों के समय गुप्तचर विभाग में या पुलिस विभाग में कार्यरत स्वयंसेवक व समर्थक कर्मचारी भी बड़े उपयोगी सिद्ध हो रहे थे। वे अपने को खतरे में डालकर भी मदद करते थे।

जब विश्वनाथ ने बुर्का पहना

विश्वनाथजी उन दिनों पाकपट्टन तहसील प्रचारक थे। मदनलाल थे नगर कार्यवाह। आरिफवालीा मंडी के एक कारखाने में बम बनाए जा रहे थे। कारखाना था नगर संघचालक बत्रा का। अकस्मात विस्फोट हो गया और ये दोनों गंभीर रूप से घायल हो गए। यह सूचना मोंटगुमरी कार्यालय को वहां सकर्तकता के लिए मौजूद एक बाल स्वयंसेवक ने पहुंचायी। जिला प्रचारक रामदत्त व नगर प्रचारक विटठल देवघरे चिन्ता में पड़ गए। समस्या यह थी कि घायलों को सुरक्षित अस्पताल कैसे पहुंचाया जाय तथा उनके उपचार की व्यवस्था कैसे की जाए। विस्फोट होने के कारण शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया था तथा पुलिस तेजी से विस्फोट स्थल की खोज में लगी थी।

संयोग से उसी समय एक बाल स्वयंसेवक कार्यालय आया और उसने देवघरे को सूचना दी कि अमुक गुप्तचर कार्यकर्ता निर्धारित स्थान पर आया है। उन दिनों ऐसे कई स्वयंसेवक थे

जो सरकारी कर्मचारी थे, पर थे अत्यंत साहसी, निर्भीक व विश्वस्त। वे सरकारी गतिवधियों की सूचना लेकर देते थे। इसी प्रकार गुप्तचर विभाग में कार्यरत एक कार्यकर्ता ने वह सूचना भिजवायी थी। देवघरे तुरन्त निर्धारित स्थान पर पहुंचे। उसे जो सूचना देनी थी उसने दी। उसके बाद देवघरे ने उसे मदनलाल व विश्वनाथ के घायल होने की जानकारी दी। उन दिनों नये डी. एस.पी. पुलिस मोंटगुमरी आये थे। उसी शमा को वे आरिफवाला जाने वाले थे पर अब वे कल सबेरे जायेगे यह सूचना गुप्तचर ने उन्हें दी। देवघरे ने कहा डी.एस.पी. अभी नये है, उन्हें कोई नहीं पहचानता। अगर तुम डी.एस.पी. की वर्दी ला दो तो काम बन सकता है। उसने कहा यह काम सरल है। मेरे घर के पास वह धोबी रहता है जो अफसरों व कर्मचारियों के कपड़े धोता है। मैं उससे ले आऊँगा। वह गया और डी.एस.पी. की वर्दी ही नहीं एक सामान्य सिपाही की वर्दी भी ले आया। रामदत्त ने तो डी.एस.पी. की वर्दी पहनी व देवघरे ने सिपाही की। शाम सात बज रहे थे दोनों जीप में सवार गए, अपने साथ मल्लहम पट्टी का सामान रखा। डी.एस.पी. की जीप का नम्बर इनके पास था। उधर उस गुप्तचर कर्मचारी ने आरिफवाला पुलिस चौकी को फोन कर दिया कि नए डी.एस.पी. साहब आज ही रहे है। जहां से भी ये निकलने पुलिस चौकी पर इन्हें सेल्यूट ठोका जाता। आरिफवाला चौकी पर भी कुछ देर निरीक्षण का नाटक कर जीप आगे बढ़ा दी। अब वे श्री बत्रा की फैक्ट्री के नुक्कड़ पर अन्दर पहुंचे। दरवाजा खटखटाया। चौकीदार पुलिस को देखकर घबराया। पर रामदत्त ने कहा, पुलिस नहीं है, मैं हूं रामदत्त। चौकीदार ने बताया कि दोनों गाय के कोठे में है। रामदत्त व देवघरे वहां गये। दोनों घायल वेदना से कराह रहे थे।

अब सवाल यह था कि दोनों घायलों को शहर के बारह कैसे ले जाया जाये। दोनों घायलों की मरहमपट्टी कर उन्हें बुरके पहना दिए गये। उन्हें कंधे पर उठाकर जीप में लिटाया और चल पड़ी जीप। यद्यपि संचारबंदी के कारण रात का सन्नाटा था पर डी.एस.पी. का वेश होने के कारण रास्ते में पुलिस ने रोका नहीं। बस सेल्यूट किया। जीप अरोड़ा भवन स्थित मोंटगुमरी कार्यालय पहुंची। घायलों को अस्पताल ले जाना खतरे से खाली नहीं था। पर तभी कोढ़ में खाज इस कहावत के अनुसार सूचना मिली कि कार्यालय पर छापा पड़ने वाला है, फिर से कर्फ्यू लगने वाला है। इसलिए किंचित भी देरी किए बिना घायलों को पुनः जीप में बैठाकर जीप चल पड़ी। सचमुच ही थोड़ी देर में पुलिस ने कार्यालय को घेर लिया, परन्तु इस बीच वहां उपस्थित स्वयंसेवकों ने पट्टियां व दवा की शीशी आदि दूसरी ओर फेक दी थी तथा सब सफाई कर दी थी, पुलिस को कुछ भी हाथ न लगा।

उधर जीप मोंटगुमरी की सीमा पाकर ओकाड़ा शहर की ओर चल पड़ी। ओकाड़ा से बाहर दो तीन किलोमीटर के अन्तर पर ओकाड़ा नगर संघचालक भाई चूहड़मल का एक कारखाना था। पर रास्ते में ही मदनलाल की मृत्यु हो गई। रात को ही विश्वनाथ को एक डॉक्टर स्वयंसेवक के निजी रुग्णालय में भर्ती कराया गया। दूसर दिन मदनलाल का अन्तिम सरकार ओकाड़ा शमशान पर ही कर दिया।

भारी बलिदान के बाद...

मिंटगुमरी से 17-18 कि.मी. दूर एक गांव था नूरशाह। वहां 60प्रशित मुसलमान व 40 प्रतिशत हिन्दुओं की आबादी थी। आसपास के गांवों में 90प्रतिशत मुसलमान थे। इस गांव नूरशाह में संघ की अच्छी शाखा थी। स्वयंसेवक साहसी थे। एक दिन आसपास के मुसलमानों ने एकत्रित होकर गांव पर हमला कर दिया। स्वयंसेवकों को आशंका तो थी ही कि कभी भी हमला हो सकता है। इसलिए जितनी भी संभव थी उन्होंने तैयारी की हुई थी। कुछ हथियार भी एकत्रित किये थे। पंजाब के अन्य गांवों की तरह नूरशाह भी किले की तरह था। स्वयंसेवक मोर्चो पर डट गये और बम आदि चलाकर हमलावरों को रोक दिया। पर वे संख्या में बहुत थे। भयानक संघर्ष हुआ। स्वयंसेवकों ने वीरता की पराकाष्ठा कर दी पर इतनी बड़ी भीड़ के सामने गांव की रक्षा कैसे कर पाते। उनमें से भी कुछ शहीद हो गए थे। माता-बहनों ने जब यह देखा कि मोर्चा कभी भी टूट सकता है तो उन्होंने कुओं में छलांग लगाना शुरु कर दिया। मुसलमान उनको अपमानित करेंगे यह स्पष्ट था। उससे बचने हेतु वे शहीद हो रही थी, जौहर रच रही थी।

इस बीच मिंटगुमरी कार्यालय में सूचना पहुंचा दी गयी थी कि नूरशाह में कभी भी मोर्चा टूट सकता है। सूचना पाते ही स्वयंसेवक पुलिस के वेष में जीप में बैठकर चल पड़े नूरशाह की ओर। उन सबके पास बंदूकें थी। वहां पहुंचते ही उन्होंने भीड़ पर गोलियां चलाना शुरु कर दिया। भारतीय पुलिस आ गयी है यह समझकर भीड़ सिर पर पैर रखकर भागने लगी। संकट का समाधान हो गया, परन्तु भारी बलिदान के बाद।

स्वयंसेवकों ने की काफिले की मोर्चाबंदी

मिंटगुमरी में यह अफवाह बड़े होर से फैलायी गयी कि पं. नेहरू ने दो ट्रेनें मिंटगुमरी के हिन्दुओं को सुरक्षित निकाल लाने हेतु वहां भेजी है। सभी तुरन्त उन ट्रेनों में जाकर बैठ जाये। वे ट्रेनें उन्हें अमृतसर ले जायेगी।

क्रमश.....

Wahe Guru Ji Ka Khalsa- Wahe Guru Ji Ki Fateh"

(Birth of Khalsa on Baisakhi Day of 1699 A.D.)

A book written in Urdu by historian named Abu Ulla Turani, who was originally a Brahman and then a convert to Islam. He was an agent of Mughal Emperor Aurangzeb and was posted in the court of Shri Guru Gobind Singh Ji to smuggle out news about the Guru, in the garb of a Brahman, wearing the Brahmanical makes on forehead, cotton dhoti and sacred thread. He would send daily reports to the Emperor. He lived with the Guru's gardener, named Gulabu. Every day he would go go the Gur and pay his respects. The Tenth viz Guru Gobind Singh ji who with his divine instincts, knew Abu Turani's identity, would smile and accept his obeisance.

Abu Turani worked as the Emperor's spy in the Guru's court for about two years. In the book mentioned above, he has recorded an eye-witness account of the Baisakhi day of 1699. "On this day, the Guru prepared a new Nectar i.e. Amrit. There were about 35-40 thousand people present in the gathering to hear the Guru. The Mughals at the time had four thrones: Delhi, Agra, Lahore and Kalanaur but the throne of Guru at Anandpur, had its own glamour. This throne beat all the Mughal thrones in their splendeour. This day the Guru wore a gorgeous dress. He came into the court, unsheathed his sword and in a loud voice said "I need one head." Without any hesitation one Daya Ram came forward and offered himself for the sacrifice. The Guru, in front of whole congregation, struck Daya Ram's head with his sword and severed it from his body. The audience was stunned and speechless. The Guru said again " I need another head." Immediately, Dharam Chand Stood up and bowed to the Guru. The Guru served his head too, in one stroke. The audience panicked and started leaving the court, "The Guru asked for another head and one after the other, he beheaded three more devotees, Himmat rai, Mohkam Chand, Sahib Chand. Many people went to the Guru's mother and narrated the whole episode. The Guru, then cleaned and washed the five corpses and their severed heads. He also cleaned he floor so that no mark of blood was left anywhere. Then, the prophet of infidels, stitched the severed heads with one another corpse without discriminating between them and covered them with white sheets. This process took about three hours.

The Guru, them called for a huge stone and put on it a big steel bowl which had no handles. He poured water in the bowl and started churning it into Nectar. The prophet of the infidles stirred the water with the swored and recited some holy words. This went on for about two hours. At this time a women, perhaps related to the prophet, came forward and put some thing in the bowl. Now the Nectar was ready.

Guru sat towards the heads of the corpses. He uncovered their faces and put some nectar first in Daya Ram's mouth and sprinkled on his head and then over all his body, and said, "Say Wahe Guru Ji Ka Khalsa, Wahe Guru Ji Ki Fateh" (Khalsa beongs to God and God is victorious). Immediately, Daya Ram became alive, stood up and repreated the words after the Guru. The whole congregation went pale. Despite many thousand people parent, no one could breathe loudly. They all had frozen under the spell of the Guru's miracle. He then sprinkled the Nectar on the other four corpses and asked them to say "Wahe Guruji Ka Khalsa, Wahe Guruji ki Fateh". They all came back to life and stood before the Guru with folded hands. The Guru then took all the five into an adjoining marquee. After a while they all came out dressed in new clothes. The Guru asked them to give a drink of that Nectar to him. they asked him what he would pay for the Nectar. The Guru said,"I promise that I will sacrifice may parents, my children and all that I possess for the well-being of my people and my country." Then, the five were also named Daya Singh, Dharam Singh, Himmat Singh, Mohkam Singh and Sahib Singh and were called "the dear ones (Pyaras)."

Abu Ulla Turani writes that after watching all these miraculous happening, he wept and cried. He cursed himself for this treachery to the Guru. He then saw many thousands more begging the guru for the Nectar. He too could not control himself and like the force of magnet, felt pulled towards the Gur, and begged him for a drop of Nectar. The Guru patted on his back, sprinkled Nectar on his body, and changed his name to Ajmer Singh and all his sins were washed away. He then joined the Guru's army and fought many battles against injustice.

On that day he sent his last report to the Emperor. He wrote to hiem every thing that he had seen and witnessed and warned him not to quarrel with the Guru, who, in his opinion was Allah (See Page 24)

रिषीकेश लट्टा

- **गुरुदत्त**, देहरादून

पंजाब की पुलिस एक क्रांतिकारी की तलाश में थीं, जो उसके हाथ नहीं आ रहा था। उसका नाम था रिषीकेश लट्टा जो, लाहौर विश्वविद्यालय का स्नातक था और सरदार अजीत सिंह तथा सूफी अंबाप्रसाद के निर्वासित हो जाने के पश्चात क्रांतिकारी दल का काम सम्हाले हुए था। छात्र-जगत पर उसका अच्छा प्रभाव था और पूरे पंजाब में घूम-घूम कर वह क्रांति का जाल बिछाता जा रहा था। उसके मारे ब्रिटिश हुकूमत की नींद हराम हो रही थी। इसीलिए उसे पकड़ने के लिए पंजाब पुलिस बहुत सक्रिय हो उठी थी।

रिषीकेश होशियारपुर जिले के घोशरा गांव का रहने वाला था और उसके पिता चौधरी संदतराम अपने इलाके के प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। पैसे की उनके पास कमी नहीं थी और वे अपने पुत्र का उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। लाहौर के डी. ए.वी. कॉलेज में पढ़ते हुए रिषीकेश सरदार अजीत सिंह के सपनों में आया। सरदार जी के अग्निपथ अस्तित्व ने क्रांति की एक चिंगारी युवक छात्रों के दिल में रख दी।

जब रिषीकेश ने देखा कि पंजाब पुलिस बुरी तरह से उसके पीछे पड़ गई है और दल का सामान्य कार्य करना भी कठिन हो गया है तो उसने अपने साथियों से इस विषय पर परामर्श किया। दल का यही निर्णय था कि कुछ दिन के लिए उसे भारत से बाहर चले जाना चाहिए। दल का नेतृत्व साथी प्रेमपाल को सौंपकर रिषीकेश भूमिगत हो गया और कुछ दिन पश्चात् सन् 1906 में वह ईरान के तेहरान नगर में जा पहुंचा।

तेहरान पहुंच कर रिषीकेश ने भारतीय क्रांति का प्रसार प्रारम्भ कर दिया। ईरानी युवकों को वह अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काने लगा। तेहरान का ब्रिटिश रेजीडेन्ट उसकी गतिविधियों से परेशान हो गया और उसने उसकी गिरफ्तारी के लिए बीस हजार रुपए का पुरस्कार घोषित किया। रिषीकेश ईरान में भी भूमिगत हो गया और उसने अंग्रेजों के विरुद्ध ईरानी क्रांतिकारियों का एक दल संगठित कर डाला। शीघ्र ही कई ईरानी क्रांतिकारी दल अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़े हुए।

ईरान की सरकार इस भारतीय नौजवान के प्रति बड़ी स्नेहिल थी। यह उसकी सेवाओं को पुरस्कृत भी करना चाहती थी ओर उसे गिरफ्तारी से भी बचाना चाहती थी। ईरानी सरकार ने बहुत बड़ा वजीफा देकर रिषीकेश को उच्च अध्ययन के लिए यूरोप भेज दिया।

रिषीकेश ने यूरोप में रूस, ऑस्ट्रिया, हंगरी, फ्रांस, जर्मनी, हॉलैण्ड, रुमानिया और तुर्की का अच्छी तरह भ्रमण किया और भारतीय क्रांति की चिंगानियां वह सभी जगह छोड़ता गया। चूंकि वह ईरानी सरकार के खर्चे से घूम रहा था, इस कारण जहां-जहां ईरानी राजदूत थे, वे हर प्रकार से उसकी सहायता कर रहे थे। इस्तम्बूल में ईरान के राजदूत की सहायता से रिषीकेश अमेरिका पहुंचने में सफल हो गया।

रिषीकेश एक दृढ़-प्रतिज्ञा और सच्चा क्रांतिकारी था। वह कभी भी निष्क्रिय नहीं बैठ सकता था। अमेरिका के कैलीफोर्निया नगर में जब भारत की आजादी के दीवानों ने युगान्तर-आश्रम और गदर पार्टी की स्थापना की तो रिषीकेश भी संस्थापकों में से एक था। जब प्रथम विश्व-युद्ध छिड़ गया तो रिषीकेश और उसके साथी क्रांतिकारी सक्रिय हो उठे। वे लोग एक ओर तो भारत के क्रांतिकारियों के पास हथियार और धन-जन भेजने लगे और दूसरी ओर अमेरिका में भारत की आजादी के प्रति वातावरण तैयार करने गले।

वैधानिक रूप से भारत पहुंचने के लिए रिषीकेश ने ब्रिटिश शासन से अनुमति मांगी, पर उसे अनुमति नहीं मिली।

युद्ध के दिनों में भारतीय क्रांतिकारी जर्मनी में बहुत सक्रिय हो रहे थे। अमेरिका छोड़ रिषीकेश जर्मनी जा पहुंचा और बर्लिन स्थित भारतीय क्रांतिकारियों के कंधों के साथ कंधा मिलाकर कार्य करने लगे। बर्लिन रहते हुए रिषीकेश ने एक जर्मनी लड़की के साथ शादी की। जब युद्ध में जर्मनी की पराजय हो गई तो वह ईरान जा पहुंचा। तेहरान में ही सन् 1930 की 3 फरवरी को उस तूफानी क्रांतिकारी की मृत्यु हो गई।

रिषीकेश लट्टा के जीवन का प्रत्येक क्षण और उसकी प्रत्येक सांस भारत की आजादी के लिए समर्पित है।●

Contd. Page 23

himself. He also wrote, if the emperor would not accept his plea, his empire would collapse and his name would be wiped off from the pages of history.

Khalsa was thus made a classless representation from the classed human beings. The five Pyars, (the dear ones) were made supreme for all purposes and were honored with an epithet of the word Bhai, prefixed before their names.

Bhai Days Singh was Khatri from Lahore (Punjab)
Bhai Dharam Singh a Jat of Hastinapur Near Delhi
Bhai Mohkam Singh a Tailor of Dwarka (Gujrat)
Bhai Himmat Singh, Mema of Jagan Nathpuri (Orrisa)
Bhai Sahib Singh, Barbar of Bidar (Karnataka)

Sewak : **Shri Bal. K. Kapur**, Bergenfield, N.J
Note : Copy of this book has also been seen in the library of Aligarh Muslim University, India

भारत की आजादी में सिखों का योगदान

- डॉ. अवतार सिंह शास्त्री

भारत में सिखों की आबादी यहां की कुल जनसंख्या का दो प्रतिशत भी नहीं पर देश की स्वतंत्रता के लिए की गई कुर्बानियां, देश स्वतंत्रता की रक्षा के संबंध में निभाई जा रही जिम्मेवारी और देश के नव-निर्माण में इनकी ओर से किया गया योगदान बाकी सभी देशवासियों से कई गुना अधिक है। यदि यह कहा जाए कि आज देश की स्वतंत्रता की रक्षा निर्भर ही केवल कलगीधर जी के वीर सुपुत्रों पर करती है तो यह ना तो अतिशोक्ति है और न ही गलत।

भारत में सिखों की जनसंख्या भले आटे में नमक के बराबर भी नहीं है, पर देश स्वतंत्रता के लिए सिखों की कुर्बानियों का उल्लेख किए बिना देश स्वतंत्रता का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता।

सिख कौम का इतिहास बताता है कि इसका जन्म ही केवल देश को विदेशी (जखणियों) हमलावरों से स्वतंत्र करवाने और देशवासियों को छूत-छात, ऊंच-नीच तथा बेकार के कर्मकाण्डों की अत्यधिक गुलामी से मुक्त कराने के लिए ही हुआ था।

भारत का इतिहास इस बात का ग्वाह है कि यह देश अपने वसनीकों की अनैतिकता, चरित्र-हीनता, आपसी फूट और खुदगर्जी के कारण दो हजार सालों से कभी शकों और हूनों को, कभी गौरीयों और गजनवियों का, भी लोधियों और मुगलों का, कहीं पूर्त गेज़ीयों और अंग्रेजों का गुलाम होता आ रहा था। यहां से ही बस नहीं, ये पानी भरने वाले मशकीयों और गुलामों का भी गुलाम हो चुका है। इसी लम्बी गुलामी ने इस देश की वीरता, स्वाभिमान और गैरत को स्थित करके रख दिया था। यहां तक कि भारत में पहले विदेशी हमलावर मीर कासिम के समय ईस्वी सन् 712 ई. से ही इस देश की गैरत और स्वाभिमान की चुनौती देनी आरम्भ हो गयी थी और यहां के असली वासियों और वसनिकों का काफी तंग किया जाने लगा। इस देश के हिन्दू तीर्थों और धर्म स्थानों की बेअदबी की जाने लगी। पूज्य भारती महापुरुषों और ''भगवानों'' की मूर्तियों को तोड़कर कर पैर मार मार कर अपमानित किया जाता रहा। इस देश की धन सम्पत्ति ऊंटों, बैलगाड़ियों, घोड़े, गाड़ियों, खच्चारों, ऊंट गाडियों और गायों के ऊपर लाद-लाद कर ढो-ढो कर देश में लूट-लूट कर ले जाती रही। भारत की सुन्दरियों को संसार भर में तोहफों की तरह भेजा जाता रहा और गजनी के बाजारों में लेजाकर एक-एक टके में बेचा जाता रहा है, पर इस ऋषियों-मुनियों और अर्जुन तथा भीम जैसे चक्रवर्ती राजाओं की संतानों से भरे हुए इस देश में से एक जबर और अत्याचार के विरुद्ध कोई बोल सकने की भी हिम्मत न कर सका। इस सभी को ईश्वर का हुक्म और भगवान की रजा मानकर के बर्दाश्त किया जाता रहा।

भारत का इतिहास इस बात का ग्वाह है कि 1526 तक पूरे आठ सौ पन्द्रह सालों तक यह जुल्म हाते रहे और श्री गुरु नानकदेव जी पहले सतिगुरु थे जिन्होंने 1528 ई. में वक्त के मीर बाबर को जाबर कहकर और उसकी हुकूमत को बुच्चड़ों की हुकूमत कहके इस जुल्म के विरुद्ध भारी प्रोटैस्ट किया। नतीजे के तौर पर उनको बाबर की जेल में चक्कियां पीसनी पड़ी, पर बाबाजी की पीसी इन चक्कियों में बाबा नानक ने देशवासियों के दिल में छाये हुए गुलामी के डर की भावना को पीस दिया। देशवासियों को देश स्वतंत्रता का अहसास करवाया और जगह-जगह जाकर 'कलि काती राजे कसाई'' हो गए का डंका दिया और ''पाप की जंझ लै काबलो धाया जोरी मंगै दान वे लालो।'' के खतरे का अलार्म बजा दिया और ''खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुस्तान डराया।। आपै दोस न देइ करता जम कर मुगल चढ़ाया'' (आसामहला 1-360) की देश के कोने-कोने में खबर कर दी और साथ ही देश के स्वतंत्रता सेनानियों की एक कौम की बुनियाद रख दी और देशवासियों के सीने में देश स्वतंत्रता के जज्बे की ज्योति प्रज्वलित कर दी। आप ने जिल्लत और कीचड़ में गिरे हुए लोगों को झंझोड़ कर ब्यान किया था-

जे जीवै पति लत्थी जाए। सभ हरामु जेता किछु खाए॥

(पन्ना 142)

आपजी के उपरान्त आपके जा-नशीन नौ सतिगुरु साहिबान ने ज्योति को जलता रखे रहने का भार उठाया और इसे पूरी तरह निभाया, जिसके फलस्वरूप पांचवे सतिगुरु श्री गुरु अर्जुनदेव जी को इस देश की स्वतंत्रता की बलि वेदी पर सबसे पहले अपने शरीर की आहुति देनी पड़ी। निःसन्देह देश की स्वतंत्रता के लिए सबसे पहले शहीद हुए-श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज।

उनके बाद दूसरे शहीद थे श्री गुरु तेगबहादुर जी और उनके सिख भाई मतीदास जी, सतीदास जी और भाई दयाला जी और श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के चारों साहिबजादे और अन्नत सिखों ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए देश, धर्म के लिए अपनी जाने कुर्बान की।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने सारा जीवन ही देश में से

विदेशी ताकतों को बाहर निकालने और जुल्म का नाश करने की कठिनाईयों में ही लगाया है। उनके बाद पूरी की पूरी सिख कौम ही उनके पद चिह्नों पर चलती हुई देश-स्वतंत्रता आन्दोलन की मुदई बनी हुई है। सिखों की धरती पंजाब ही देशभर में वो हिस्सा है जोकि सिखों ने सारा देश गुलाम हो जाने पर भी 1849 ई. तक अंग्रेजों के मनहूस पैर पड़ने से बचाए रखा।

सिखों को देशभक्ति की भावना जन्म घुट्टी के तोर पर दी गई है। यही कारण है कि देश की स्वतंत्रता का कोई ऐसा आन्दोलन नहीं, जिसमें इन्होंने सबसे आगे होकर कुर्बानियां देकर चमत्कार न दिखाएं हो।

1824 ई. के बर्मा युद्ध के इतिहास पर नजर डालने पर पता चलता है कि अंग्रेजों के पास उस समय सिख सैनिकों की बहुसंख्यक कम्पनी 47, नेटिव इनफैक्न्टरी थी, जिसने बर्मा के विरुद्ध, जो उस वक्त भारत का एक ही अंग था, लड़ने से इंकार कर दिया था और 1824 में बेरिकपुर पहुंच कर बरमी भाईयों के विरुद्ध लड़ने के लिए आगे बढ़ने से इंकार कर दिया और विद्रोह खड़ा कर दिया। 11 नवम्बर 1824 को गोरा फौजों की सहायता के साथ, सर एडवर्ड ने इस पूरी की पूरी इन्फैन्टरी को घेर लिया और तोपे रखके सारे फौजियों को भून दिया जो वहां से जाने बचाकर भागे, उनमें से बहुत हुगली में बह गए और जो बचे उनमें से बहुतो को बन्दी बना लिया गया और सभी को फांसी पर लटका दिया गया। यह विद्रोह भड़काने की पूरी जिम्मेदारी रसालदार सूर सिंघ, बलाका सिंघ और जाता सिंघ और एक बंगाली अफसर मिस्टर दास पर थोपी गयी। (ग्लैसगो हैरल्ड-कलकत्ता 3-11-1825)।

इस विद्रोह में 879-880 फौजी मारे गए या फांसी चढ़ाए गए। इनमें पांच सौ से ज्यादा केवल सिख थे। ये सिख यू.पी., बिहार और बंगाल के निवासी थे।

1824 में ही रुड़की के पास कुन्जा के तालुकेदार विजय सिंघ, जोकि सहारनपुर के गुज्जर नरेश रामदयाल का भतीजा था, (ये घराना गुरुघर का सेवक घराना था और इसके बड़े बुजुर्गों को सतिगुरु नानक पातशाह की चरन-धूल प्राप्त हुई थी) और इस इलाके का प्रसिद्ध देशभक्त कलवा (जो केवल अंग्रेजों का कत्ल करता था, सरकारी खजाना लूटता था और अंग्रेजों के बंगलों पर डाके डालता और जंगलों में रहता था) की अंग्रेजों के विरुद्ध जुलाई 1824 ईस्वीं में खड़ी की गई बगावत में गोरा और गोरखा फौजों के साथ लड़ते हुए 200 देशभक्त शहीद हुए, जिनमें से 8 सिख थे। 47 को अंग्रेजी सरकार ने फांसी की सजा दी, जिनमें से 17 सिख थे और कई सौ देशभक्तों को जिलावतन किया, उम्रकैद की सजाएं दी और बन्दी बनाया। इनमें से तकरीबन आधे सिख थे। ये सिख अधिकांशत: यू.पी.के रहने वाले थे।

14 अक्टूबर 1825 में गारनेडीअर कम्पनी, जिसने आसाम जाकर आसामी भाईयों की आजादी खत्म करने से इन्कार कर दिया और अंग्रेजों की नीयत बदलती देखकर विद्रोह खड़ा कर दिया था और कम्पनी के सारे अंग्रेज और गोरे अफसर सदा की नींद सुला दिये, गोरा फौजो की मदद से घर कर बहुतों को तो गोलियों से उड़ा दिया गया। कम्पनी को तोड़ दिया गया। जो जवान बच गए, उसके कोर्ट मार्शल करके अलग-अलग सख्त दण्ड दिए गए। इस बगावत का दोष करतार सिंघ और हरिसिंघ नामक फौजियों सिर मढ़ दिया गया। इस कम्पनी में बिहारी सिखों की गिनती ज्यादा थी। कुछ आसामी सिख भी थे। इस विद्रोह में कोई 400 के करीब सिख शहीद हुए थे।

अंग्रेज नए-नए हथियार पंजाब में अपने पास अभी तक पूरी तरह जमा भी नहीं कर सके थे कि जब औरंगाबाद के महाराजा सिंघ ने 1847 में विद्रोह का झंडा बुलन्द कर दिया परन्तु आंखों की रोशनी चली जाने के कारण उसके साथ एक हिन्दू व्यक्ति ने गद्दारी की और हुकूमत के पास उनकी मुखबरी करके उसे पकड़ा दिया। हुकूमत ने उसको कारावास देकर सिंगापुर भेज दिया जहां जेल में ही उसकी मौत हो गयी। फिर जल्दी ही सरदार अंतर सिंघ अटारी वाले ने आजादी का बिगुल बजाया परन्तु एक शक्तिशाली सम्राज्य के विरुद्ध उस अकेले की क्या दाल गलती?

इसी साल के अन्त में सर चार्ल्स कैपीयर ने ऐसे आंकड़े एकत्रित कर लिए थे जिनसे यह स्पष्ट होता था कि पंजाब में 50 से ज्यादा रैजीमेंट्स अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए अवसर की ताड़ में तैयार बैठी थीं। 1850 में यह बगावत फूट पड़ी, पर चार्ल्स कैप्यिर की तत्परता के साथ यह असफल होकर रह गई। सिख रेजीमेंट सेंट्रल, जहां से यह विद्रोह आरम्भ हुआ था, को बर्खास्त कर दिया गया और 95 सिख सैनिकों को अलग-अलग सजाएं हुई।

अंग्रेजों के विरुद्ध शान्तमयी आन्दोलन सबसे पहले 1868 में, जब कांग्रेस बनी भी नहीं थी, एक सिख महापुरुष बाबा राम सिंह जी ने आरम्भ किया था। आपने अंग्रेजी जुबान, अंग्रेजी लिबास, अंग्रेजी सरकार की नौकरियों, सरकारी अदालतों, डाकखानों, रेल गाड़ियों आदि का बाईकाट करने का प्रोग्राम देश को दिया और देशभर में मुकाबले की सरकार संगठित करने का

कार्यक्रम बनाया। पंजाब में तो जगह-जगह उन्होंने अपने सूबे भी स्थापित कर दिये थे। नेपाल नरेश और रूस सरकार की सहायता का विश्वास भी प्राप्त कर लिया था, परन्तु भारत में जातिवाद और जयचन्दी जहनीयत ने पंजाब से बाहर के किसी भारतीय का सहयोग बाबा जी को न मिलने दिया।

1871 में गौ हत्या आन्दोलन भी नामधारी महापुरुष ने चलाया। जगह-जगह कसाईयों का वध कर दिया गया। श्री दरबार साहिब श्री अमृतसर के प्रवेश द्वार के साथ ही एक बूचड़खाना खोला गया था, जिसके साथ श्री दरबार साहिब और अमृत सरोवर की पवित्रता भंग होती थी। इसको कलगीधर (श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी) के ये नामधारी सूरवीर भला कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। रातों रात कसाईयों का वध करके फैंक दिया और बूचड़खाना गिरा कर जगह एक सी कर दी गई।

सिख शूरवीरों ने मिल्ट्री में भी साम्राज्यों के विरुद्ध बगावत फैलाने का यतन किया। जगह-जगह शूरवीर सूरमें इस मकसद के लिए तैनात किए गए। काबुल में भाई बिशन सिंह, ग्वालियर में भाई नारायण सिंघ, काशी में भाई काहन सिंह आदि को इस मकसद के लिए नियुक्त किया गया।

1872 में सिंघों ने असलाखाने पर कब्जा करने का फैसला किया। इस यतन में कोतवाल और 7 फौजी मारे गए। लुधियाना के डी.सी. ने फौजी सहायता मांगी और साथ लगती रियायतों को भी मदद करने के लिए कहा और इस तरह एक बड़ी फौज के साथ नामधारियों के इस दल को गिरफ्तार कर लिया गया।

1869 में नामधारियों ने खालसा राज की स्थापना का ऐलान किया पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। अंग्रेजों का सितारा अभी चमकना था।

सरदार दयाल सिंह जी को 'दयाल सिंह कॉलेज' या दैनिक ट्रिब्यून से कई लोग जानते होंगे। पर एक महान देशभक्त और पहले आन्दोलन के महान नेशनल लीडर के तौर पर कोई नहीं जानता होगा। आपजी के दादा भाई नारो जी ऊंचे राष्ट्रीय लीडर थे और 1893 में ऑल इण्डिया नेशनल कांग्रेस के लहौर सैसन के प्रधान चुने गए थे।

1907 में सरदार अजीत सिंह (शहीद भगत सिंह के चाचा जी) ने 'पगड़ी सम्भाल जट्टा दिवस'' की चेतावनी देकर देश के स्वतंत्रता सेनानियों को हूणों और अंग्रेज सरकार को एक खुला चैलेंज दिया। पर हालात साजगार न होने पर अपने दूसरे साथियों लाला हरिदयाल और राम बिहारी बोस के साथ देश से बाहर निकल गए और कैलीफोर्निया में हैडक्वार्टर में रहकर भारत स्वाधीनता की लहर को चलाने लगे। अमेरिका और कनेडा के सिखों ने ''गदर पत्रिका'' नामक अखबार शुरु किया और विदेशों में रहते सिखों को देश की स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करने का काम आरम्भ किया।●

सेवा करत होइ निहकामी। तिस कउ होत परापति सुआमी।।

पूरे संगत भवन के निर्माण में लगने वाली अनुमानतः कुल निर्माण सामग्री

बेनती :- निम्न निर्माण सामग्री में जो भी आप स्वयं, आपकी इकाई, अपके सम्पर्क के दानी एवं सेवाभावी महानुभाव योगदान डालना चाहते हों, अतिशीघ्र भिजवाएं।

● सीमेंट-2000 बोरी ● सरिया-50 टन ● रोड़ी ● बदरपुर ● रेता स ईंटे ● बिजली व्यवस्था ● लिफ्ट (8X8)● जेनरेटर (80 के.वी.ए.) ● सैनिट्रेशन व्यवस्था● पी.ओ.पी.व्यवस्था● आन्तरिक साज-सज्जा स फर्नीचर।

● **पत्थर-(राजस्थान इकाई ने देना स्वीकार किया है।) ● भवन में लगने वाली लकड़ी (इन्दौर-म.प्र., मालवा प्रदेश अध्यक्ष स. इन्दरजीत सिंह खनूजा) भिजवा दी है।**

राष्ट्रीय सिख संगत

जो हमको परमेश्र उचरि हैं। ते सभ नरकि कुण्ड महि परिहैं।।
मो कौ दास तवन का जानो। या मै भेद न रंच पछानो।।- श्री गुरु गोबिन्द सिंह

हरियाणा प्रदेश राष्ट्रीय सिख संगत के प्रदेश समागम में राष्ट्रीय अध्यक्ष स. गुरचरन सिंह जी गिल का आह्वान

जगाधरी-यमुनानगर (हरियाणा) स. हरजीत सिंह मोंगा-प्रदेश अध्यक्ष ने राष्ट्रीय सिख संगत के राष्ट्रीय अध्यक्ष स. गुरचरन सिंह गिल, राष्ट्रीय महामंत्री संगठन श्री अविनाश जायसवाल, पंजाब प्रदेश अध्यक्ष स. रघुबीर सिंह जी को हरियाणा की धरती पर 'जी आईयां' कहते हुए अभिवादन किया। उपस्थित संगतों से विचार सांझे करते हुए स. मोंगा ने कहा कि राष्ट्रीय सिख संगत हरियाणा स्थापना काल से ही श्री गुरुग्रंथ साहिब की सांझीवालता के सन्देश को जन-जन तक पहुंचाने के लिए अग्रसर रहा है। आज भी समाज की सांझीवालता को जो चुनौतियां मिल रही हैं। उनको स्वीकार कर गुरुओं के उपदेश को घर-घर पहुंचाने के लिए जो भी कार्ययोजना तय होगी, उसे पूरा करने में हरियाणा के पदाधिकारी अपना भरपूर योगदान डालेंगे।

राष्ट्रीय अध्यक्ष सत्कारयोग स. गुरचरन सिंह गिल ने आह्वान करते हुए कहा कि हम सबको राष्ट्रीय सिख संगत के लिए सदैव समर्पित स्वर्गीय किशन सिंह जी का स्मरण कर उनके समान राष्ट्रीय सिख संगत की चढ़दी कला करवाने के लिए आगे आना होगा। आज सिखी के गढ़ पंजाब में नौजवानों को नशों में धकेलने का विदेशी शक्तियां घिनौना खेल खेल रही हैं। इस प्रकार देश, धर्म, समाज, पंथरक्षक, युवा पीढ़ी को अपने विरसे से काटकर न केवल गुरु परम्परा को लांछित कर रही हैं बल्कि सीमान्त क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, चण्डीगढ़ की राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक एकता और अखण्डता के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर रही है। ऐसे वातावरण में गुरुओं द्वारा दिखाए मार्ग पर चलकर आज के युवाओं को अपने विरसे से जोड़ने के लिए प्रयास करने होंगे। राष्ट्रीय सिख संगत ने मुम्बई, ग्वालियर, जयपुर, भोपाल, दिल्ली में 'अखिल भारतीय युवा गुरमत विकास कैंप' लगाकर जो पहल की है उसे हर प्रान्तों तक सम्पन्न करना होगा। स. गिल ने संगतों से विचार सांझे करते हुए कहा कि हर परिवार एक समय अवश्य एकत्र होकर भोजन करे, ताकि अपने परिवार में ना केवल अपनापन बल्कि अपने संस्कारों को भी प्रतिदिन सांझा किया जा सके। सन् 1983 की अपने अनुभव की एक घटना सुनाते हुए गिल साहब ने बताया कि एक परिवार की महिला को किसी सरकारी अधिकारी ने अपने सहायक के साथ गांव भिजवाया। किन्तु वो थोड़ी देर में वापिस आ गया। पूछने पर पता चला कि उस गांव के एक सरदार साहब मिल गए थे उनके साथ परिवार की महिला को भिजवा दिया गया है। उस समय सिख की ऐसी प्रेरक छवि थी। किन्तु सन् 84 के सरकारी कत्लेआम, ब्ल्यू स्टार ऑपरेशन के परिणाम स्वरूप राजनीति ने देश, समाज, धर्म, पंथ रक्षक सिख समाज को आतंकवादी, कटटरवादी, अलगाववादी बनाकर खड़ा कर दिया। राष्ट्रीय सिख संगत ने अपनी स्थापना काल से ही पुनः गुरु परम्परा का सम्मान स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न किए आज उससे देश, समाज गौरवान्वित हो रहा है। इस पवित्र कार्य के लिए हम सबको लगातार जागरूक रहकर समाजिक समरसता (सांझीवालता) के लिए कार्य करना होगा।

दूसरे सत्र की अध्यक्षता करते हुए स. रघुबीर सिंह जी ने संगतों को बताया कि पंजाब में राय सिख समाज का इसाईयों द्वारा धर्मान्तरण सिखी पर बहुत बड़ा हमला है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने धर्म जागरण के माध्यम से 30 हजार इसाई हो गए राय सिखों को फिर से सिखी में शामिल कराकर समाज के अन्य संगठनों को मार्ग दिखाया है। राष्ट्रीय सिख संगत का पूरा सहयोग इस पवित्र कार्य में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ है। श्री शीशपाल सिंह आहलुवालिया ने मेवात-पिनंगवां में राष्ट्रीय सिख संगत के काम को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। गुड़गांव से ही पधारे श्री वीरेन्द्र सिंह भण्डारी ने युवकों और बुद्धिजीवियों में सामाजिक समरसता का महत्व बताते हुए कहा कि इसी अमृत से समाज को जीवन मिलता है।

यमुनानगर निष्काम सेवा सोसयटी के चेयरमैन डॉ. परविन्दर पाल सिंह, सामाजिक संस्थाओं और गुरुद्वारों के मुखी डॉ. जोगिन्दर सिंह, डॉ. वोहरा, श्री चुन्नीलाल, स. हरभजन सिंह, स. महिन्दर सिंह, स. मनमोहन सिंह, स. संतोष सिंह-प्रधान श्री गुरुद्वारासिंह सभा ने समागम में विचार सांझे किए। श्री अविनाश जायसवाल ने मासिक मिलन, संगत संसार मासिक पत्रिका के प्रचार-प्रसार के लिए विचार सांझे किए। ●

पवित्र पांवटा साहिब (हिमाचल प्रदेश) जिसे दशम पातशाह श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी की अनेक वर्ष चरणधूलि प्राप्त रही

- गुरचरन सिंह गिल

राष्ट्रीय सिख संगत के राष्ट्रीय अध्यक्ष स. गुरचरन सिंह गिल (एडीशनल एडवोकेट जरनल-राजस्थान सरकार) ने पांवटा साहिब में संगतों का आह्वान करते हुए कहा कि सर्वंशदानी दशम पातशाह ने भंगानी (हिमाचल प्रदेश) के युद्ध में विजय प्राप्त कर धर्म की स्थापना के लिए संत सिपाही का जो रूप प्रकटाया, वह आज न केवल गुरसिखों बल्कि सभी गुरु नानक नामलेवाओं को प्रकटाने का संकल्प लेना होगा, तभी हम उनके द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलकर समाज, देश, पंथ, धर्म की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं। वर्षों पांवटा साहिब में रहकर दशम् पातशाह ने श्री दशमग्रंथ (रामावतार, कृष्णावतार, विचित्र नाटक, चण्डी दी वार) जैसे ग्रंथों की रचना कर, आने वाली पीढ़ियों के लिए चानन मीनार बनकर, जो महान कार्य किया है उससे हिन्दुस्थान का युगों-युगों तक गौरव बना रहेगा।

हरियाणा के प्रदेश अध्यक्ष स. हरजीत सिंह मोंगा ने संगतों से विचार सांझे करते हुए कहा कि दशम पातशाह श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी ने खालसा सिरजना कर जो इतिहास रचा वह दुनिया भर में स्वर्णिम पृष्ठों पर लिखा गया है।

पंजाब के प्रदेश अध्यक्ष स. रघुबीर सिंह-अमृसर ने गुरुओं द्वारा दिखाए रास्ते पर दृढ़ता से चलने के लिए जोर देते हुए कहा कि आज हिन्दुस्थान को विशेषकर सीमान्त प्रान्त पंजाब को धर्मान्तरण के रूप में जो चुनौती मिल रही है तभी उस अमानवीय तफान से अपने विरसे की रक्षा की सकेगी। युवा प्रमुख उत्तराखण्ड स. सुरिन्दर सिंह नामधारी ने संगतों को बताया कि आज का नौजवान अपने विरसे की संभाल के लिए तैयार है लेकिन उसे ठीक रास्ता दिखाने वाले सच्चे मार्गदर्शक चाहिये। वह आज भी देश, धर्म, समाज, पंथ विरोधी ताकतों का मुकाबला सफलतापूर्वक कर सकता है।

राष्ट्रीय महामंत्री संगगठन श्री अविनाश जासवाल ने उपस्थित संगतें के ध्यान में लाया कि कुछ विशेष करने के लिए नियमपूर्वक इकटठे आना और मिलकर विचार-विमर्श कर अपने सभ्याचार के अनुसार व्यक्तिगत मिलना, छोटी बैठकें करना, मासिक मिलन करना, गुरुपर्व मनाने के माध्यम से बड़े समाज को सम्पर्क करना, लंगर, मेडीकल कैंप, रक्तदान कैंप, अपने गौरवशाली शहीदी इतिहास को प्रदर्शनी के रूप में नई पीढ़ी और आम जन तक पहुंचाने के लिए कार्यक्रम बनाकर जागृति निर्माण करना ही अपने गौरव को बनाए रखने का सफल प्रयास होता है।

राष्ट्रीय अध्यक्ष स. गुरचरन सिंह जी गिल के पांवटा प्रवास की विशेष व्यवस्था करवाने वाले सम्पर्क अधिकारी सत्कारयोग भूलेश्वर बंगवाल ने उपस्थित संगतों को प्रोत्साहित करते हुए कहा कि जिस पांवटा साहिब को देश-धर्म-पंथ-समाज रक्षक दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी की वर्षों चरणधूलि प्राप्त रही है वहां से दसम् ग्रंथ का सन्देश-

'याही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधु सब मनमं। धरम चलावन संत उबारन। दुसट सभन को मूल उपारन।'

देश के जन-जन तक पहुंचाने का संकल्प लें।

जिला प्रमुख स. रविन्दर सिंह सैनी, सहयोगी स. परमजीत सिंह-सूरजपुर ने राष्ट्रीय सिख संगत के राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा अन्य उपस्थित पदाधिकारियों को बताया कि हम दसम् पातशाह श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी एवं श्री गुरुग्रंथ साहिब की सांझीवालता के सन्देश को न केवल पांवटा साहिब में बल्कि जिला और प्रदेश के गुरु नानक नामलेवा तक पहुंचाने के लिए सतत प्रयास करेंगे। पांवटा साहिब ग्रामीण के स. कश्मीर सिंह ने संगतों से विचार सांझे करते हुए कहा कि गुरु साहिबान का सन्देश हम सबके लिए युगों युगों से अमृत का काम रहा है। पांवटा नगर संयोजक स. कुलवंत सिंह ने कहा कि गुरु परम्परा में सेवा का सबसे ऊंचा स्थान है। दीन-दुखियों, रोगियों की सहायता के लिए भाई कन्हैया की परम्परा को अपनाकर हम सब गौरवांवित होंगे।●

विशेष ध्यानार्थ :-संगत संसार सोसायटी एवं राष्ट्रीय सिख संगत के पदाधिकारी एवं समूह कार्यकर्ताओं के लिए

1. क्या आप जानते हैं कि संगत संसार के द्वारा बनाए गए हिन्दुस्थान के 41 प्रान्तों में अपना सजीव सम्पर्क बना हुआ है।

2. संगत संसार पत्रिका अपनी वैबसाइट:: **www.sangatsansar.com** को खोलकर (डाउनलोड कर) दुनियां के किसी भी देश में हर मास नियमित पढ़ी जा सकती है।

3. विश्व की न्यारी, वाहिगुरु की पवित्र वाणी का अमृत तथा देश, धर्म, पंथ, समाज की रक्षा के लिए की गई हजारों शहीदियों के इतिहास से अपने घर में बैठकर ही अपने सम्पूर्ण परिवार को सरल, सहज, स्वाभाविक रूप में जोड़े रख सकते हैं।

सतिनाम का जाप कराउं- चहुँ वरणों को एक कराऊं।-श्री गुरुगोबिन्द सिंह

देहरादून (उत्तराखंड)। वाहिगुरुजी की खालसा-वाहिगुरुजी की फतेह सांझी करते हुए राष्ट्रीय मंत्री श्री राकेश रिखी ने उत्तराखण्ड समूह पदाधिकारियों से विचार सांझे करते हुए कहा कि राष्ट्रीय सिख संगत दसम् पातशाह श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के सन्देश को घर-घर पहुंचाकर देश, समाज, धर्म, पंथ की एकता के लिए संकल्प बद्ध है। दसम् पातशाह ने खालसा सिरजना कर तथा पांच प्यारे सजाकर अपनी वाणी को अपने जीवन में ही चरितार्थ कर जालिम मुगल तानाशाही को धराशायी करवाकर बन्दा सिंह बहादुर द्वारा खालसा राज की स्थापना कर दिखाई थी।

राष्ट्रीय अध्यक्ष स. गुरचरन सिंह गिल ने श्री गुरुग्रंथ साहिब जी में भक्तों और भट्टों की वाणी को स्थान देने के लिए गुरु परम्परा का क्रांतिकारी पग बताते हुए कहा कि उस समय सारा देश, समाज, कुरीतियों और अज्ञान के अंधेरे में डूबा हुआ था। जाति-पाति और ऊंच-नीच ने समाज में घोर नफरत और परस्पर शत्रुता के भाव को बड़हावा देकर टुकड़ों-टुकड़ों में बांट दिया था। गुरु परम्परा ने सारे समाज में सामाजिक समरसता का अमृत संचार कर संजीवनी का काम किया था। जिसके परिणाम स्वरूप जालिम जहांगीर से लेकर औरंगजेब तक के जुल्मों के खिलाफ विश्व की अलौकिक शहीदियां होकर महाराजा रणजीत सिंह जी द्वारा खालसा राज की स्थापना हुई। उस महान विरसें को ना केवल वर्तमान में, बल्कि आने वाली नौजवान पीढ़ियों तक पहुंचाने की जिम्मेवारी राष्ट्रीय सिख संगत के समूह पदाधिकारियों की है। उत्तराखण्ड ने राष्ट्रीय सिख संगत के माध्यम से हरिद्वार महाकुम्भ में जो स्वर्णिम इतिहास रचा, उसी के परिणाम स्वरूप उस समय सम्पर्क में आए संतों के आशीर्वाद से बिदर में '500 साल-बाबा नानक दे नाल' महान समागम में गोविन्दवाल के बाबा बलदेव सिंह जी द्वारा 'लंगर भाई लालो जी' में योगदान, वहां उपस्थित लाखों संगतों के लिए वरदान बन गया। आने वाले समय में उत्तराखण्ड के समूह पदाधिकारी राष्ट्रीय सिख संगत के द्वारा प्रचारित श्री गुरुग्रंथ साहिब के महान सन्देश को गांव-गांव में पहुंचाने में समर्थ हों, ऐसी वाहिगुरुजी से अरदास है।

प्रदेश महामंत्री स. सुखविन्दर सिंह-काशीपुर ने 'संगत संसार' मासिक पत्रिका की सदस्यता का संकल्प लिया। युवा प्रदेश महामंत्री स. सरिन्दर सिंह नामधारी ने युवाओं को गुरमत से जोड़कर उत्तराखण्ड को नशामुक्त, अपराधमुक्त बनाने में योगदान डालने की बात की। देहरादून के महानगर अध्यक्ष स. जसवंत सिंह राणा ने उपस्थित संगतों का आह्वान किया कि हमारी काम करने की गति और बढ़नी चाहिए। देहरादून महामंत्री स. हरदियाल सिंह ने राष्ट्रीय सिख संगत के कार्य को वाहिगुरु की सेवा बताया। बीबी जसमीत कौर ने कीर्तन और पाठ के द्वारा घर-घर सन्देश पहुंचाने की योजना बनाई। देहरादून संभाग संगठन मंत्री सतकारयोग गुरुदत्त जी उपस्थित समूह कार्यकर्ताओं को निरन्तर योगदान डालने का आह्वान किया। प्रदेश उपाध्यक्ष स. जयमल सिंह, बीबी रोशन कौर, बीबी रणजीत कौर, स. मेजर सिंह, स.संतोष सिंह, श्री यशपाल आनन्द, श्री राजेश शर्मा एवं बीबी राजेश शर्मा ने भी विचार सांझे किए। ●

सद्दा (निमंत्रण)

कार्यक्रम : अखण्ड भारत दिवस

दिनांक : 14 अगस्त 2014 दिन-वीरवार **समय** : प्रातः 10.00 बजे

स्थान : 'संगत भवन' 7441, तेलमिल गली, रामनगर, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55

मुख्य अतिथि : डॉ. हर्षवर्धन जी, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री-भारत सरकार

मुख्य वक्ता : स. गुरचरन सिंह गिल, राष्ट्रीय अध्यक्ष-राष्ट्रीय सिख संगत

प्रदेश, विभाग, जिला के सभी पदाधिकारी अपने सम्पर्क के प्रतिष्ठित महानुभावों के साथ पधारें।

-: दास :-

देवेन्दर सिंह गुजराल	बीबी हरजीत कौर जौली	महिन्दर सिंह बाली
राष्ट्रीय उपाध्यक्ष	राष्ट्रीय मंत्री	प्रदेश अध्यक्ष

राष्ट्रीय सिख संगत-दिल्ली प्रदेश

प्रकाशक/मुद्रक राकेश रिखी द्वारा संगत संसार सोसाइटी (पंजी.) के लिए लाईन आर्ट प्रिंटर्स 33/4ए रामनगर, दिल्ली-110051 से मुद्रित करवाकर, 4/28, W.E.A., सरस्वती मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-5 से प्रकाशित किया। सम्पादक- डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री